ज्ञानपीठ-लोकोदय ग्रन्थमाला-हिन्दी ग्रन्थाङ्क-५

मिलन यामिनी

बच्चन

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

मिलन यामिनी की

प्रथम पंक्ति सूची

क्रम संख्या — पृष्ठ संख्या

पूर्व भाग

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या

मध्य भाग

क्रम संख्या			पृष्ठ संख्या
१९—अधीर हैं समीर अंतरिक्ष में	..	..	२१५
२०—सहस्र नेत्र खोलकर खड़ा गगन	..	..	२१६
२१—नखत समूह आसमान पर चढ़ा	..	..	२१७
२२—तरणि छिपा कि आँधियाँ झपट पड़ीं	..	..	२१८
२३—नवीन राग में रमे नवीन घन	..	..	२१९
२४—पुकारता पपीहरा पि...आ, पि...आ	..	..	२२०
२५—विहंग माल डाल पर उतर पड़ी	..	..	२२१
२६—बिखर हुई विलुप्त अभ्र अर्गला	..	..	२२२
२७—पहन चुका गगन नखत-खचित-वसन	..	..	२२३
२८—वसंत का पवन कि श्वास प्यार का	..	..	२२४
२९—पलाश पर दुलार, लो, उतर पड़ा	..	..	२२५
३०—कि वह कभी न स्वर्ग में समा सका	..	..	२२६
३१—सुना कि एक स्वर्ग शोधता रहा	..	..	२२४
३२—कहीं अनादि का पता लगा रहा	..	..	२२८
३३—उसे न विश्व की विभूतियाँ दिखीं	..		२२९

मिलन यामिनी

तेजी को

जिसके तन की विमल कल्पना
'अजित' 'अमित' की बन किलकार
पुलक उठी मेरे आँगन में।

जिसके मन की विकल भावना
मथ मेरे मन का संसार
मुखर हुई मेरे गायन में।

जिसकी वाणी की वर वीणा
अमर क्षणों की बन झनकार
गूँज रही मेरे जीवन में!

बच्चन

मिलन यामिनी

विचार-तारकों की परछाईं में

बच्चन की रचनाओं में 'मिलन यामिनी' प्रकाशन से पूर्व ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी है। पुस्तक के प्रकाशन में जितनी ही अधिक देर हुई है, पाठकों की प्रतीक्षा उतनी ही अधिक अधीर होती गई है। प्रेमियों के तक़ाज़े, अनुरोधों और चुटकियों से जब कवि का नाकों दम आ गया है तब कहीं पाठकों को प्राप्त हो पाई है 'मिलन यमिनी'। इस बारे में कवि ने 'आमुख' में जो कैफ़ियत दी है, उसे चुपचाप स्वीकार कर लेना ही ठीक है। अधिक तर्क-वितर्क कीजियेगा या उलझियेगा, तो 'मिलन यामिनी' के रस-सिक्त दुर्लभ क्षणों को खो बैठियेगा और ग़ालिब की फ़ेहरिस्त में, बज़्म से परीशाँ-हाल निकलनेवालों में नाम लिखवा लीजियेगा :—

"बूयेगुल, नालये-दिल, [1]दूदे-चिराग़े-महफ़िल
जो तेरी बज़्म से निकला सो परीशाँ निकला"

जब बच्चन से मैंने ज्ञानपीठ के लिए 'मिलन यामिनी' का प्रकाशनाधिकार दे देने का अनुरोध किया, तो उन्होंने अप्रत्याशित ही प्रश्न किया—ज्ञानपीठ के भारी भरकम नाम के साथ 'मिलन यामिनी' की तुक कैसे बिठायेंगे ? मैंने कहा—ज्ञानपीठ उस सब साहित्य का आदर करता है जो जीवन को प्रेरणा अथवा प्रतिबिम्ब दे'। 'मिलन यामिनी' में जीवन की एक प्रबल और उद्दाम प्रेरणा का कलापूर्ण चित्रण तो है ही, इसमें हमें एक कलाकार के अन्तस्तल की और विकसित व्यक्तित्व की निकटतम झाँकी मिलती है।

---

[1]धुआँ

'मिलन यामिनी' का बच्चन की रचनाओं में क्या स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। एक तो इसलिए कि पाठकों की रुचि और रसबोध की क्षमता तथा आलोचकों के निजी दृष्टिकोण और साहित्यिक मान्यताओं में विभिन्नता है; दूसरे इसलिए कि बच्चन की काव्यसाधना नैसर्गिक झरने की तरह नित नये क्षेत्रों, नई घाटियों और वादियों को पार करती बढ़ी जा रही है—लगता है जैसे वह कभी किसी समतल स्थानपर जाकर नदी की धारा का रूप लेगी ही नहीं। 'मधुशाला', 'एकान्त-संगीत', 'बंगाल का काल', 'हलाहल', और 'खादी के फूल' की भावनाएँ, शैली, और तत्कालीन प्रेरणाएँ एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न हैं। इनमें एकसूत्रता यदि है तो यही कि सब बच्चन की रचनाएँ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस रचना में हम बच्चन को अधिक से अधिक पाएँ वही उनकी प्रतिनिधि और स्थायी रचना मानें। इस दृष्टि से 'मिलन यामिनी' बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके १०० गीतों से हमें उन प्रेरणाओं का बोध होता है जिन्होंने कवि के हृदय को मथकर उसकी भावनाओं को मुखरित और व्यक्तित्व को विकसित किया है।

प्रेम जीवन की प्रबलतम प्रेरणा है। इसके अनेक नाम हैं, अनेक रूप हैं और अनेक प्रकार से इसका आदान-प्रदान होता है। इसलिए इसकी अभिव्यक्ति भी अनेक देशों में, अनेक भाषाओं में विविध प्रकार से हुई है। किन्तु, प्रेम की अनुभूति और अभिव्यक्ति में कुछ ऐसे अमर और सर्वव्यापक तत्व हैं जो देश, काल, जाति और व्यक्ति की सीमाओं का अतिक्रमण करके सामान्य जन-जीवन और जग-जीवन को अनुप्राणित करते हैं। 'मिलन यामिनी'; के पीछे एक ऐसे कवि का हृदय है जिसने जीवन के विभिन्न पहलुओं को निर्द्वन्द्व होकर अत्यन्त निकट से देखा है; जिसने संसार की प्रतिक्रियाओं से संघर्ष किया है; जो प्राप्य के लिये तपा है और खपा है तथा जिसकी अनुभूति ने सागर की गहराइयाँ और शिखरों की ऊँचाइयाँ नापी हैं। अभिशाप को भी बरदान की तरह झेलता, निशाओं को निमंत्रण देता, एकान्त संगीत में अन्तर की आकुलता को उँडेलता हुआ कवि एक दिन उस मंज़िल पर पहुँचा जहाँ सतरंगिनी की आभा और आकर्षण उसके प्राणों पर

छा गए । 'मिलन यामिनी' उसी जीवन-यात्रा और जीवन-साधना की एक परितृप्ति पूर्ण मंज़िल है:—

"मैं जलन का भाग अपना भोग आया,
तब मिलन का यह मधुर संयोग आया।"

और, 'मिलन यामिनी' के भरमाये-भरसाये चाँद-तारे, उच्छ्वसित फूल, ठुमकती वायु और गीत-दीप जिस रूपसी के एक दृष्टि-निक्षेप, एक पद-चाप और एक मुस्कराहट से शतशत बार पुलकित हो उठते हैं, कवि की उस प्रेयसी-प्रेरणा की झलक क्या कम महत्व की है ? कवि की स्वीकारोक्ति है :—

"बनकर आग नहीं पैठा जो, कब उसको स्वीकार किया है,
बनकर राग नहीं निकला जो, कब उसका इज़हार किया है,
स्थान दिया कब उसको मैंने, मथ न दिया जिसने मन मेरा।"

इस अनाहूत, दुर्द्धर्ष, अद्भूत और अपरिहार्य प्रेम के प्रति कवि के आत्मसमर्पण का चित्र कितना सजीव है :—

"खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनों से
जोकि रुक सकता नहीं मैं,
खींचतीं किन पीर-भीगे गायनों से
जोकि रुक सकता नहीं मैं,
है समय किसको कि सोचे बात वादों की, प्रणों की,
मान के, अपमान के, अभिमान के बीते क्षणों की;
फूल यश के, शूल अपयश के बिछा दो रास्ते में,
घाव का भय, चाह किसको पंखुरी के चुंबनों की।
मैं बुझाता हूँ पगों से आज अन्तर के अँगारे
और वे सपने कि जिनको कवि-करों ने थे सँवारे,
आज उनकी लाश पर मैं पाँव धरता आ रहा हूँ;

खींचतीं किन मौन दृग के जल कणों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं ।"

कवि का यह उद्दाम और अप्रतिहत प्रेम जिस मिलनोत्सुक यामिनी में, प्रेयसी के हृदय की धड़कन में प्रतिध्वनित होकर आत्म-निवेदन करेगा, उस 'मिलन यामिनी' का वातावरण कितना मोहक होगा !! 'मिलन यामिनी' में वसन्त और वर्षा तथा सन्ध्या और चान्दनी के गीत अनेक लड़ियों में गूँथे गए हैं। प्रकृति का कोई चित्रण ऐसा नहीं, वातावरण का कोई स्पन्दन ऐसा नहीं जो कवि की भावनाओं और अनुभूति के सहज सामंजस्य के कारण एकाकार और तद्रूप न हो गया हो। कुछ नमूने देखिए :—

वसन्त:—"कुछ अनजाने सुख से सिहरीं सब सूखी सूखी शाखायें,
उनपर ऐसी लाली दौड़ी, जैसे गालों पर शरमायें
उस बाला के जिसका कोई मुखचुंबन पहली बार करे !
यह देख समा मेरी सहमी आँखों में आँसू भर आये ।
क्या था उस मादक लाली में, क्या उस मोहक हरियाली में ,
जिससे छाती में तीर चुभे, जिससे अन्तर में चाह जगी !

इसी का दूसरा रूप निहारिये:—

"अनगिनत बसन्ती फूलों के गुच्छों में, गिनती के—
पत्तो का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास !

× × ×

मेरी अभिलाषायें बिखरीं कुसुमों की सुन्दरता बनकर,
मेरे चिन्तन के क्षण कितने निखरे छाया में छन-छनकर,
डालें भुज हैं जिनको मेरी आशाओं ने फैलाये हैं,
विश्वास अटल मेरा बैठा इसकी जड़ की दृढ़ता बनकर ।

यह वृक्ष नहीं जिसपर पतझर, मधुऋतु का शासन चलता है;
प्रत्याशाओं के झूलों में झूला-भूला स्वप्निल तत्त्वों—
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास।"

वर्षा:—

"झर-झर लो वृष्टि लगी होने, अम्बर के दृग के कोने से,
मन क्यों यों गल-ढल जाता है, अभिलाषा पूरी होने से,
अन्तर में उमड़े भावों का इतना ही तो इतिहास नहीं,
मोती की फ़सलें उगती हैं, आँसू की बूंदें बोने से।"

सन्ध्या:—"प्राण, सन्ध्या झुक गई गिरि, ग्राम तरुपर
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद
मेरा प्यार पहली बार लो तुम"

चान्दनी:—"चान्दनी रात के आँगन में
कुछ छिटके-छिटके से बादल
कुछ भटका-भटका-सा मन भी!
जब सारी दुनिया सोयी है, तब नभ मंडलपर चाँद जगा,
कुछ सपनों में डूबा-डूबा, कुछ सपनों में उमगा-उमगा,
उसके पथ में अनचाहे से कुछ बेबस बादल के टुकड़े;
जैसे ये बादल के टुकड़े सुखमा का आँचल थामे से,
अनजान किसी पर न्योछावर
क्या शोभन, स्वगतमय होगा
मेरे उर का पागलपन भी ?"

'मिलन यामिनी' का प्रणय व्यापार कवि की दृष्टि में प्रकृति की एक स्वाभाविक माँग है, जिसकी पूर्ति के लिए कविता के पात्र साधन मात्र हैं:—

"सखि अखिल प्रकृति की प्यास, कि हम-तुम भीगें;

अकस्मात यह बात हुई क्यों जब हम-तुम मिल पाये,
तभी उठी आँधी अम्बर में, सजल जलद घिर आये,
यह रिम-झिम संकेत गगन का, समझो या मत समझो,
सखि, भीग रहा आकाश कि हम-तुम भीगें।"

× × ×

"हम किसी के हाथ में साधन बने हैं,
सृष्टि की कुछ माँग पूरी हो रही है,
हम नहीं अपराध कोई कर रहे हैं,
मत लजाओ, और देखो उस तरफ़ भी—
प्राण, रजनी भिंच गई नभ के भुजों में
थम गया है शीश पर निरुपम रुपहरा चाँद,
मेरा प्यार बारम्बार लो तुम"..........

और उसके बाद

"किन्तु तृण-तृण ओस छन-छन कह रही है
आ गई वेला विदा के आँसुओं की;
यह विचित्र विडम्बना पर कौन चारा,
हो न कातर, और देखो उस तरफ़ भी—
प्राण, राका उड़ गई प्रातः पवन में,
ढल रहा है क्षितिज के नीचे शिथिलतन चाँद
मेरा प्यार अन्तिम बार लो तुम"।

निःसन्देह 'मिलन यामिनी' की इस प्रकार की कवितायें पढ़कर एक विशेष प्रकार के आदर्शवादी पाठकों के मन में प्रतिक्रिया होगी कि कलाकार रसातिरेक में बह गया, उसका वर्णन आवश्यकता से अधिक अनावृत हो गया, श्लील की डोर शिथिल हो गई......और ये, कि कुछ चीजें हैं जो कही नहीं जाया करतीं, छिपाई जाया करती हैं, आदि आदि। इस आलोचना के उत्तर में हम कुछ न

कहेंगे; पाठकोंका ध्यान कवि की इन पंक्तियों की ओर आकर्षित करेंगे :—

"मैं गाता हूँ,
मैं गाता हूँ, इसलिए जवानी मेरी है।...
कलियाँ मधुबन में गंध-गमक मुस्काती हैं,
मुझपर जैसे जादू सा छाया जाता है;
मैं तो केवल इतना ही सिखला सकता हूँ,
अपने मनको किस भाँति लुटाया जाता है!
लिखने दो अपनी दुर्बलता का गीत मुझे,
मैं जग के तर्ज-अमल से हूँ अनभिज्ञ नहीं;
दुनिया अक्सर मेरे कानों में कहती है,
इस कमज़ोरी को, मूढ़, छिपाया जाता है।
मैं किससे भेद छिपाऊँ सब तो अपने हैं,
अपनी बीती में जग-बीती मैं पाता हूँ।

मानवता के प्रति बच्चन की जो अटूट श्रद्धा है और उसकी वेदी पर कवि ने उपासना के जो फूल चढ़ाये हैं उनके दर्शनों से ही हम मानो पवित्र हो जाते हैं और हमारी आलोचना कुंठित हो जाती है :—

"मनुष्य हर स्वरूप में पवित्र है".....
"विरागमग्न हो कि राग-रत रहे,
विलीन-कल्पना, कि सत्य में दहे,
धुरीण पुण्य का कि पाप में बहे,
मुझे मनुष्य सब जगह महान है।"

'मिलन यामिनी' की कुछ कवितायें कितनी ही पार्थिव, अनावृत और इन्द्रियार्थिणी लगें, वास्तव में इनके मूल में कवि का वह व्यापक और दार्शनिक दृष्टिकोण निहित है और इनके अन्तर में वेदना और व्यथा का वह स्रोत घुमड़ रहा है जो पार्थिव को अपार्थिव और इन्द्रियार्थी को आत्मार्थी (व्यापक अर्थ में) बना देता

है। स्नेह के अपरिमित उल्लास में और समर्पण की उद्भ्रान्त घड़ियों में भी कवि की दृष्टि अपार्थिव की प्राप्ति की ओर ही है :—

"मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ।
तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो,
उम्र इन उद्भ्रान्त घड़ियों की बड़ी हो,
मधु मिला है, मैं अमृत-कण खोजता हूँ।
जी उठा मैं, और जीना प्रिय बड़ा है,
सामने पर ढेर मुर्दों का पड़ा है,
पा गया जीवन सजीवन खोजता हूँ,
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ!

× × ×

"मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते खाते
उससे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही!
है मेरा पूरा सफ़र नपा, मेरी छाती की धड़कनसे
मैं लेता हूँ हर साँस अमर विश्वास लिए
मैं पहुँच न पाऊँ जीते जी अपनी मंज़िल,
पर, मरने पर मंज़िल मुझतक पहुँचेगी ही!
मैं गाता हूँ हर गीत मधुर विश्वास लिए
लहराती अम्बर पर, तारों से टकराती
ध्वनि पास तुम्हारे एक समय गूँजेगी ही"।

'आमुख' में बच्चन ने जिस "उत्तरोतर भावनाओं" के 'शिखर' का उल्लेख किया है, पाठक उस शिखर पर मिलन यामिनी के उत्तर भाग की कविताओं के माध्यम से पहुँचता है। उत्तर भाग के प्रायः सभी गीत शीर्षकों की नूतनता, छन्द के प्रवाह, अभिव्यक्ति की सुघराई और परिमार्जित शैली के आकर्षण के कारण अनूठे बन पड़े हैं। इनमें अनेक गीत भावनाओं के स्वाभाविक उत्थान,

उत्कर्ष और अवसान के कारण अपने आपमें इतने सम्पूर्ण हैं कि इनमें 'लिरिक' (Lyric) की मिठास, सौनेट (Sonnet) का अभिव्यक्ति-कौशल और 'रुबाई' का दार्शनिक चमत्कार मिलता है। उत्तर भाग की आरंभिक कवितायें प्रणय की प्रतीक्षा और व्यथा को मिलन के आशा भरे क्षणों में प्रभात, सन्ध्या और रात्रि के अथवा शिशिर और वसंत के प्रतीकों द्वारा प्रस्फुटित करते हैं। ऐसी प्रत्येक कविता का अन्त जीवन और ज्योति से भरे छन्द-चरणों में हुआ है।

इस भाग में तीन-तीन छन्दों की अनेक ऐसी सरस और सजीव रचनायें हैं जिनके एक-एक छन्द में बारी-बारी से प्रकृति और प्रणय के उन्मेष, प्रस्फुटन और सफल अवसान का एक-एक चित्र सामञ्जस्य की सम्पूर्णता में निर्दोष और मोहक बन पड़ा है। उदाहरणार्थ :—

"समीर स्नेह रागिनी सुना गया, तड़ाग में उफान सा उठा गया,
तरंग में तरंग लीन हो गई; झुकी निशा, झँपी दिशा, झुके नयन!
बयार सो गई अडोल डाल पर,
शिथिल हुआ सलिल सुनील ताल पर,
प्रकृति सुरम्य स्वप्न बीच खो गई;
गई कसक, गिरी पलक, मुंदे नयन!
विहंग प्रीत-गीत गा उठा अभय, उड़ा अलक चला ललक पवन मलय,
सुहाग नेत्र चूमने चला प्रणय; खुला गगन, खिले सुमन, खुले नयन!"

इसी दृष्टि से इस भाग की बारहवीं कविता 'समेट लो किरण कठिन दिनेश ने' के प्रत्येक छन्द की अन्तिम पंक्ति देखिए :—

"नटी निशीथ का पुलक उठा हिया",
"निशा सभीत ने कहा कि, 'क्या किया',"
"निशा विनीत ने कहा कि 'शुक्रिया',"

१७ वीं कविता—'हुई गुलाल मेघमाल अस्त जब" एक अद्भुत रचना है जो व्यञ्जना में सार्थक और प्रतीक में परिपूर्ण है। यहाँ आभूषणों की झंकार

से ही प्रकृति और प्रणय का त्रिक्रियात्मक व्यापार--उन्मेष, उत्कर्ष और परितृप्त अवसान दिखाया गया है। प्रत्येक छन्द की अन्तिम पंक्ति हैं:--

"मुखर चरण ध्वनित हुए झनन-झनन"....
"सुवर्ण किंकिणी बजी छनन-छनन"....
"खनक उठे कनक-वलय खनन-खनन".....

यह बात नहीं कि 'मिलन यामिनी' में खामियाँ नहीं हैं। कुछ कवितायें ऐसी हैं जो या तो शब्द-बहुल हैं या उनका पूरा प्रभाव ग्राह्य नहीं बन पाता। पूर्व भाग और उत्तर भाग की कई कविताओं में कला और कल्पना का इतना अन्तर है कि यदि वे 'मिलन यामिनी' के कलेवर से निकाल दी जायें तो शायद पता भी न चले कि यह बच्चन की लिखी हुई हो सकती हैं। शायद यही कारण है कि 'मिलन यामिनी' के प्रति सबसे बड़ा अन्याय स्वयं बच्चन ने किया है। 'आमुख' में लिखा है : "अपने लक्ष्य का ध्यान करता हूँ तो मुझे 'मिलन यामिनी' से उतना ही असन्तोष होता है, जितना अपनी प्रारम्भिक रचनाओं से।"

तो फिर, बच्चन का 'लक्ष्य' क्या है ? उसकी विवेचना में जायेंगे तो शायद ऐसी भूलभुलैयाँ में फँस जायेंगे कि स्वयं बच्चन भी हमें न निकाल पायेंगे। बच्चन ने कहा है :--

"जो असम्भव है, उसीपर आँख मेरी,
चाहती होना अमर, मृत राख मेरी"

और यह भी कहा है :--

"जग दे मुझपर फ़ैसला उसे जैसा भाये,
लेकिन मैं तो बेरोक सफ़र में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला".....

--लक्ष्मीचन्द्र जैन
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थमाला

आमुख

'मिलन यामिनी' की कविताएँ सन् १९४५ से पत्र-पत्रिकाओं में निकल रही थीं। इन्हें अब संग्रह रूप में उपस्थित कर रहा हूँ। कई कारणों से इसे प्रकाशित कराने में आवश्यकता से अधिक विलंब हो गया। इसे देखने के लिए उत्सुक मित्र प्रायः यह भोंडा प्रश्न भी पूछने से नहीं हिचके कि, 'आपकी मिलन यामिनी कब समाप्त होगी ?' उन्हें लंबी प्रतीक्षा कराने के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। इसे देखकर शायद वे कह सकेंगे---देर आयद दुरुस्त आयद।

'मिलन यामिनी' में ९९ कविताएँ हैं। इन्हें मैंने ३३-३३ के तीन भागों में विभक्त कर दिया है। पहले और तीसरे भाग में मैंने एक खास तरह के साँचे में ढली कविताएँ रक्खी हैं। दूसरे भाग में कोई ऐसा प्रतिबंध स्वीकार नहीं किया गया। आशा है कविताओं का प्रस्तुत विभाजन और क्रम आरंभ से अंत तक पढ़नेवालों को, कहीं-कहीं कुछ उतार-चढ़ाव के बावजूद भी, उत्तरोत्तर भावनाओं के उस शिखर की ओर ले जायगा जो 'मिलन यामिनी' लिखते समय बराबर मेरी दृष्टि में रहा है। यों अपने आप में प्रत्येक कविता स्वतंत्र भी है।

अपने प्रिय मित्र श्री महाराजकृष्ण राजन के निमंत्रण पर मैं यहाँ वायु-परिवर्तन के लिए आया था और विचार था यहाँ पूर्ण विश्राम करूँगा। परंतु इस मनोरम स्थान में जहाँ एक ओर तो हिमाच्छादित धवलीधार पर्वतमाला खड़ी है और दूसरी ओर अनेक पहाड़ी नालों और झरनों से निनादित और अभि-सिंचित काँगड़ा की उर्वरा घाटी फैली है जिसकी दक्षिणी सीमा पर व्यास नदी दूर दूध की रेखा के समान दिखाई देती है, मैं अपनी वाणी पर नियंत्रण न रख

सका। यहीं 'मिलन यामिनी' पूर्ण हुई और यहीं मैंने उसके गीतों का क्रम आदि स्थापित किया एवं प्रेस कापी भी तैयार की।

श्री महाराजकृष्ण और उनके मित्रों ने मेरे यहाँ ठहरने और काम करने की जो सुव्यवस्थाएँ कीं और सुविधाएँ दी हैं उन सबके लिए मैं उनका आभार मानता हूँ, और उन्हें विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उनका स्नेह, सौहार्द और उनके रम्य प्रदेश की स्मृतियाँ सदा के लिए 'मिलन यामिनी' के साथ संबद्ध हो गई हैं।

'मिलन यामिनी' के प्रति मेरे कतिपय प्रेमियों के उद्गार मुझे प्रायः संकोच में डालते रहे हैं। अपने लक्ष्य का ध्यान करता हूँ तो मुझे 'मिलन यामिनी' से उतना ही असंतोष होता है जितना अपनी प्रारंभिक रचनाओं से।

माउंट-प्लेज़ेंट
धर्मशाला-काँगड़ा
६. ४. ४६

बच्चन

मिलन यामिनी

मिलन यामिनी

पूर्व भाग

१

चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

दिवस में सबके लिए बस एक जग है,
रात में हर एक की दुनिया अलग है,
कल्पना करने लगी अब राह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

भूमि का उर तप्त करता चंद्र शीतल,
व्योम की छाती जुड़ाती रश्मि कोमल,
किंतु भरतीं भावनाएँ दाह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

कुछ अँधेरा, कुछ उजाला, क्या समा है,
कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है,
किंतु बैठा मैं सँजोए आह मन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

चाँद निखरा, चंद्रिका निखरी हुई है,
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है,
काश मैं भी यों बिखर सकता भुवन में;
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

२

प्यार की असमर्थता कितनी करुण है ।

चाँद कितनी दूर है, वह जानता है,
और अपनी हद्द भी पहचानता है,
हाथ इसपर भी उठाता ही वरुण है ;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है ।

सृष्टि के पहले दिवस से यत्न जारी,
दूर उतनी ही निशा की श्याम सारी,
किंतु पीछा ही किए जाता अरुण है ;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है ।

कट गए शत कल्प अपलक नेत्र खोले,
कौन आया ? सुन इसे नक्षत्र बोले,
भावना तो सर्वदा रहती तरुण है ;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है ।

जो असंभव है उसीपर आँख मेरी,
चाहती होना अमर मृत राख मेरी,
प्यास की साँसें बचीं, बस यह शकुन है ;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है ।

३

मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

है मुझे संसार बाँधे, काल बाँधे,
है मुझे ज़ंजीर औ' जंजाल बाँधे,
किंतु मेरी कल्पना के मुक्त पर-स्वर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

धूलि के कण शीश पर मेरे चढ़े हैं,
अंक ही कुछ भाल के ऐसे गढ़े हैं,
किंतु मेरी भावना से बद्ध अंबर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

मैं कुसुम को प्यार कर सकता नहीं हूँ,
मैं कली पर हाथ धर सकता नहीं हूँ,
किंतु मेरी वासना तृण-तृण निछावर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

मूक हूँ, जब साध है सागर उँडेलूँ,
मूर्ति-जड़, जब मन लहर के साथ खेलूँ,
किंतु मेरी रागिनी निर्बंध निर्झर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

२

प्यार की असमर्थता कितनी करुण है।

चाँद कितनी दूर है, वह जानता है,
और अपनी हद्द भी पहचानता है,
हाथ इसपर भी उठाता ही वरुण है;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है।

सृष्टि के पहले दिवस से यत्न जारी,
दूर उतनी ही निशा की श्याम सारी,
किंतु पीछा ही किए जाता अरुण है;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है।

कट गए शत कल्प अपलक नेत्र खोले,
कौन आया? सुन इसे नक्षत्र बोले,
भावना तो सर्वदा रहती तरुण है;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है।

जो असंभव है उसीपर आँख मेरी,
चाहती होना अमर मृत राख मेरी,
प्यास की साँसें बचीं, बस यह शकुन है;
प्यार की असमर्थता कितनी करुण है।

३

मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

है मुझे संसार बाँधे, काल बाँधे,
है मुझे ज़ंजीर औ' जंजाल बाँधे,
किंतु मेरी कल्पना के मुक्त पर-स्वर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

धूलि के कण शीश पर मेरे चढ़े हैं,
अंक ही कुछ भाल के ऐसे गढ़े हैं,
किंतु मेरी भावना से बद्ध अंबर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

मैं कुसुम को प्यार कर सकता नहीं हूँ,
मैं कली पर हाथ धर सकता नहीं हूँ,
किंतु मेरी वासना तृण-तृण निछावर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

मूक हूँ, जब साध है सागर उँडेलूँ,
मूर्ति-जड़, जब मन लहर के साथ खेलूँ,
किंतु मेरी रागिनी निर्बंध निर्झर;
मैं कहाँ पर, रागिनी मेरी कहाँ पर।

४

प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है।

पाँव के नीचे पड़ी जो धूलि बिखरी,
मूर्ति बनकर ज्योति की किस भाँति निखरी,
आँसुओं में रात-दिन अंतर गला है;
प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है।

यह जगत की ठोकरें खाकर न टूटा,
यह समय की आँच से निकला अनूठा,
यह हृदय के स्नेह साँचे में ढला है;
प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है।

आह मेरी थी कि अंबर काँप रहा था,
अश्रु मेरे थे कि तारा झँप रहा था,
यह प्रलय के मेघ-मारुत में पला है;
प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है।

जो कभी उंचास झोंकों से लड़ा था,
जो कभी तम को चुनौती दे खड़ा था,
वह तुम्हारी आरती करने चला है;
प्राण, मेरा गीत दीपक-सा जला है।

५

आज आँखों में प्रतीक्षा फिर भरो तो।

देखना किस ओर झुकता है ज़माना,
गूँजता संसार में किसका तराना,
प्राण, मेरी ओर पल भर तुम ढरो तो ;
आज आँखों में प्रतीक्षा फिर भरो तो।

मैं बताऊँ, शक्ति है कितनी पगों में ?
मैं बताऊँ, नाप क्या सकता डगों में ?—
पंथ में कुछ ध्येय मेरे तुम धरो तो ;
आज आँखों में प्रतीक्षा फिर भरो तो।

चीर वन-घन, भेद मरु जलहीन आऊँ,
सात सागर सामने हों, तैर जाऊँ,
तुम तनिक संकेत नयनों से करो तो ;
आज आँखों में प्रतीक्षा फिर भरो तो।

राह अपनी मैं स्वयं पहचान लूँगा,
लालिमा उठती किधर से जान लूँगा,
कालिमा मेरे दृगों की तुम हरो तो ;
आज आँखों में प्रतीक्षा फिर भरो तो।

६

आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।

है कहाँ वह आग जो मुझको जलाए,
है कहाँ वह ज्वाल मेरे पास आए,
रागिनी, तुम आज दीपक राग गाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।

तुम नई आभा नहीं मुझमें भरोगी,
नव विभा में स्नान तुम भी तो करोगी,
आज तुम मुझको जगाकर जगमगाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।

मैं तमोमय, ज्योति की, पर, प्यास मुझको,
है प्रणय की शक्ति पर विश्वास मुझको,
स्नेह की दो बूँद भी तो तुम गिराओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।

कल तिमिर को भेद मैं आगे बढ़ूँगा,
कल प्रलय की आँधियों से मैं लड़ूँगा,
किंतु मुझको आज आँचल से बचाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।

७

आज मन-वीणा, प्रिये, फिर से कसो तो ।

मैं नहीं पिछली अभी झंकार भूला,
मैं नहीं पहले दिनों का प्यार भूला,
गोद में ले मोद से मुझको लसो तो ;
आज मन-वीणा, प्रिये, फिर से कसो तो ।

हाथ धर दो, मैं नया वरदान पाऊँ,
फूँक दो, बिछुड़े हुए मैं प्राण पाऊँ,
स्वर्ग का उल्लास, पल भर तुम हँसो तो ;
आज मन-वीणा, प्रिये, फिर से कसो तो ।

मौन के भी कंठ में मैं स्वर भरूँगा,
एक दुनिया ही नई मुखरित करूँगा,
तुम अकेली आज अंतर में बसो तो ;
आज मन-वीणा, प्रिये, फिर से कसो तो ।

रात भागेगी, सुनहरा प्रात होगा,
जग उषा-मुसकान-मधु से स्नात होगा,
तेज शर बन तुम तिमिर घन में धँसो तो ;
आज मन-वीणा, प्रिये, फिर से कसो तो ।

८

स्नेह दो तो आज़ लौ फिर सिर उठाए ।

देश-दुनिया ने मुझे बल से दबाया,
भाग्य भी लेकर तिमिर का भार आया,
अग्नि का कण मैं रहा फिर भी बचाए ;
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाए ।

प्रेम के पथ पर किरण मैंने बिछाई,
किंतु मेरी चाल जगती को न भायी,
पर कहाँ था हाथ जो मुझको बुझाए ;
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाए ।

कांति भी खोई, धुएँ से भी घिरा मैं,
ज्योति के पथ से नहीं पीछे फिरा मैं,
शत्रु भी मेरे रहे मुझको बढ़ाए ;
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाए ।

प्राण का यह दीप जलने के लिए है,
प्यार से अंतर पिघलने के लिए है;
आज हम दोनों नियम अपने निभाएँ ;
स्नेह दो तो आज लौ फिर सिर उठाए ।

६

आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो ।

एक युग मैंने गई की ओर देखा,
पर बदल पाया न उसकी एक रेखा,
रँग सकूँ नव चित्र जिसपर वह पटल दो ;
आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो ।

अश्रु-जल से सींचता सुधियाँ रहा मैं,
एक पत्ता भी न पाया लहलहा मैं,
जो खिलें मुसकान से, सपने नवल दो ;
आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो ।

भूत की यह रात भयवाली, अकेली,
किंतु भावी को बना लाऊँ सहेली,
एक आशा की किरण का, प्राण, बल दो ;
आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो ।

हो चुका प्रस्थान का सामान सारा,
जा सका पर कब जिसे तुमने पुकारा,
तुम विदा को आज स्वागत में बदल दो ;
आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो ।

१०

आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो ।

मैं अतीत अजीत से जकड़ा हुआ हूँ,
भीति-चिंता-चक्र में पकड़ा हुआ हूँ,
श्रृंखला को, प्राण, तुम भुजपाश कर दो ;
आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो ।

गीत गाओ, कोकिला शरमा रही है,
साँस में मधु-मंत्र शक्ति समा रही है,
आज तुम पतझार को मधुमास कर दो ;
आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो ।

पास आओ, चंद्रमा के होठ चूमूँ,
कुंतलों के बादलों के साथ घूमूँ,
आज तुम पाताल को आकाश कर दो ;
आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो ।

स्वप्न झूठे ही नहीं होते निरंतर,
कल्पना आती कभी साकार बनकर,
आज शंका को पुनः विश्वास कर दो ;
आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो ।

११

प्राण, जीवन का नया अध्याय खोलो ।

बीच ही में रुक गई मेरी कहानी,
पाँव बैठी काटकर उठती जवानी,
भाग्य डोलेगा अगर तुम आज डोलो ;
प्राण, जीवन का नया अध्याय खोलो ।

हाय, मेरे राग चुप हो सो गए हैं,
हाय, मेरे गीत गूँगे हो गए हैं,
वे उठें फिर बोल यदि तुम आज बोलो ;
प्राण, जीवन का नया अध्याय खोलो ।

मुसकरा दो कोटि किरणें छूट छहरें,
अश्रु की दो बूँद, मरु में सिंधु लहरें,
विंदु से तुम सिंधु की निधि आज तोलो ;
प्राण, जीवन का नया अध्याय खोलो ।

प्रेरणाओं की सरस अधिकारिणी तुम,
आज मेरे प्राण को कर दो ऋणी तुम,
स्नेह से अपने मुझे, सुभगे, भिगो लो ;
प्राण, जीवन का नया अध्याय खोलो ।

१२

बाँध दो बिखरे सुरों को गान में तुम।

गीत ठुकराया हुआ, उच्छ्वास-क्रंदन,
मधु मलय होता उपेक्षित हो प्रभंजन,
बाँध दो तूफ़ान को मुसकान में तुम;
बाँध दो बिखरे सुरों को गान में तुम।

कल्पनाएँ आज पगलाई हुई हैं,
भावनाएँ आज भरमाई हुई हैं,
बाँध दो उनको करुण आह्वान में तुम;
बाँध दो बिखरे सुरों को गान में तुम।

व्यर्थ कोई भाग जीवन का नहीं है,
व्यर्थ कोई राग जीवन का नहीं है,
बाँध दो सबको सुरीली तान में तुम;
बाँध दो बिखरे सुरों को गान में तुम।

मैं कलह को प्रीति सिखलाने चला था,
प्रीति ने मेरे हृदय को ही छला था,
बाँध दो आशा पुनः मन-प्राण में तुम;
बाँध दो बिखरे सुरों को गान में तुम।

१३

आज, मन-भावन, करो पावन वचन-मन ।

हृदय मंदिर का खुला है द्वार आओ,
प्राण आओ, प्राण के आधार आओ,
आज मानो मूक नयनों का निमंत्रण ;
आज, मन-भावन, करो पावन वचन-मन ।

साँस में कुछ घंटियाँ सी बज रही हैं,
मोतियों का अर्घ्य आँखें सज रही हैं,
है प्रतीक्षा में तुम्हारी ही प्रतिक्षण ;
आज, मन-भावन, करो पावन वचन-मन ।

बन अकिंचन पाँवड़े पलकें बिछाए,
कान अपना ध्यान आहट पर लगाए,
पुलकमय हर अंग होने को समर्पण ;
आज, मन-भावन, करो पावन वचन-मन ।

शब्द रत्नागार में हैं भाव खोए,
कौन-सी वह बोलती संपति सँजोएँ,
कर सके जो व्यक्त स्वागत, स्नेह, वंदन ;
आज, मन-भावन, करो पावन वचन-मन ।

१४

प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

चाहतीं किरणें धरा पर फैल जाना,
चाहतीं कलियाँ चटककर महमहाना,
फूल से हर डाल सजना चाहती है;
प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

चाहतीं चिड़ियाँ बसंती गीत गाना,
पत्तियाँ संदेश मधुऋतु का सुनाना,
वायु ऋतुपति नाम भजना चाहती है;
प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

इस तरह मिलना हुआ संभव कहीं है,
शील मुझसे छूटनेवाला नहीं है,
तू नहीं संकोच तजना चाहती है;
प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

कब भला संसार से डरता रहा मैं,
मौज में आया वही करता रहा मैं,
बावरी, किसको बरजना चाहती है;
प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

१५

आज आओ चाँदनी में स्नान कर लो।

तापमय दिन में सदा जगती रही है,
रात भी जिसके लिए तपती रही है,
प्राण, उसकी पीर का अनुमान कर लो;
आज आओ चाँदनी में स्नान कर लो।

चाँद से उन्माद टूटा पड़ रहा है,
लो, ख़ुशी का गीत फूटा पड़ रहा है,
प्राण, तुम भी एक सुख की तान भर लो;
आज आओ चाँदनी में स्नान कर लो।

धार अमृत की गगन से आ रही है,
प्यार से छाती उमड़ती जा रही है,
आज, लो, मादक सुधा का पान कर लो;
आज आओ चाँदनी में स्नान कर लो।

अब तुम्हें डर-लाज किससे लग रही है,
आँख केवल प्यार की अब जग रही है,
मैं मनाना जानता हूँ, मान कर लो;
आज आओ चाँदनी में स्नान कर लो।

१६

आज कितनी वासनामय यामिनी है !

दिन गया तो ले गया बातें पुरानी,
याद मुझको अब नहीं रातें पुरानी,
आज ही पहली निशा मनभावनी है ;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

घूँट मधु का है, नहीं झोंका पवन का,
कुछ नहीं मन को पता है आज तन का,
रात मेरे स्वप्न की अनुगामिनी है ;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

यह कली का हास आता है किधर से,
यह कुसुम का श्वास जाता है किधर से,
हर लता-तरु में प्रणय की रागिनी है ;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

दुग्ध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलँग पर आज उसपर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है ;
आज कितनी वासनामय यामिनी है !

१७

हास में तेरे नहाई यह जुन्हाई ।

आ उजेली रात कितनी बार भागी,
सो उजेली रात कितनी बार जागी,
पर छटा उसकी कभी ऐसी न छाई ;
हास में तेरे नहाई यह जुन्हाई ।

चाँदनी तेरे बिना जलती रही है,
वह सदा संसार को छलती रही है,
आज ही अपनी तपन उसने मिटाई ;
हास में तेरे नहाई यह जुन्हाई ।

आज तेरे हास में मैं भी नहाया,
आज अपना ताप मैंने भी मिटाया,
मुसकराया मैं, प्रकृति जब मुसकराई ;
हास में तेरे नहाई यह जुन्हाई ।

ओ अँधेरे पाख, क्या मुझको डराता,
अब प्रणय की ज्योति के मैं गीत गाता,
प्राण में मेरे समाई यह जुन्हाई ;
हास में तेरे नहाई यह जुन्हाई ।

१८

है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

शीतमय यह चाँदनी उसके लिए है,
प्रीतिमय यह यामिनी उसके लिए है,
जो दिवस की धूप सह ले, धूलि सह ले ;
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

मैं जलन का भाग अपना भोग आया
तब मिलन का यह मधुर संयोग आया,
दे चुका हूँ इन पलों का मोल पहले ;
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

गोद में तुम हो, गगन में चाँदनी है,
काल को यह भी निशा तो नापनी है,
मधु-सुधा की धार में दो याम बह लें ;
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

कह रहा है यह कि मैं आदर्श भूला,
कह रहा वह विश्व का संघर्ष भूला,
आज चाहे जो मुझे संसार कह ले ;
है रुपहली रात, हैं सपने सुनहले।

१६

आज, संगिनि, प्रीति के तुम गीत गाओ ।

सिसकियाँ बीता समय लेता रहेगा,
धमकियाँ संसार तो देता रहेगा,
आज तुम रसवाद में रसना डुबाओ ;
आज, संगिनि, प्रीति के तुम गीत गाओ ।

शोर दुनिया में हुआ है बंद किस दिन,
हो सका इंसान है निर्द्वंद किस दिन,
तुम हृदय की बात कानों को सुनाओ ;
आज, संगिनि, प्रीति के तुम गीत गाओ ।

गान पृथ्वी का ध्वनित नभ ने किया है,
पर ध्वनित किस दिन हुआ मेरा हिया है,
आज तन्मय तान मन की तुम उठाओ ;
आज, संगिनि, प्रीति के तुम गीत गाओ ।

सर-सरित उमड़े, गगन से मेघ बरसे,
सब जगह पर तप्त मेरे प्राण तरसे,
अब नयन जलधार निर्मल तुम बहाओ ;
आज, संगिनि, प्रीति के तुम गीत गाओ ।

२०

आज आ गाएँ, जगाएँ रात सोती।

मौन है आकाश, धरती मौन सारी,
नींद की छाई हुई सब पर ख़ुमारी,
रात चुप है कुछ विगत सुधियाँ सँजोती ;
आज आ गाएँ, जगाएँ रात सोती।

दिन हुआ सबने अलग निज राग छेड़ा,
कलह-कोलाहल मचा, झगड़ा-बखेड़ा,
गीत बनता साँस दो जब एक होती ;
आज आ गाएँ, जगाएँ रात सोती।

रात ख़ुश होगी हमें पा गीत गाते,
देख वह मुझको चुकी आहें उठाते,
देख वह तुझको चुकी आँसू पिरोती ;
आज आ गाएँ, जगाएँ रात सोती।

डूबना है व्यर्थ पिछले आँसुओं में,
डूबना है व्यर्थ छिछले आँसुओं में,
रात के आँसू बनेंगे प्रात मोती ;
आज आ गाएँ, जगाएँ रात सोती।

२३

प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब,
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब,
आज कुंतल छाँह मुझपर तुम किए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

रात मेरी, रात का श्रृंगार मेरा,
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा,
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

वह सुरा के रूप से मोहे भला क्या,
वह सुधा के स्वाद से जाए छला क्या,
जो तुम्हारे होठ का मधु-विष पिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

मृत-सजीवन था तुम्हारा तो परस ही,
पा गया मैं बाहु का बंधन सरस भी,
मैं अमर अब, मत कहो केवल जिए हो;
प्राण, कह दो, आज तुम मेरे लिए हो।

२४

प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

ठीक है मैंने कभी देखा अँधेरा,
किंतु अब तो हो गया फिर से सबेरा,
भाग्य-किरणों ने छुआ संसार मेरा;
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

तप्त आँसू से कभी मुख म्लान होता,
किंतु अब तो शीत जल में स्नान होता,
राग-रस-कण से धुला संसार मेरा;
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

आह से मेरी कभी थे पत्र झुलसे,
किंतु मेरी साँस पाकर आज हुलसे,
स्नेह-सौरभ से बसा संसार मेरा;
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

एक दिन मुझमें हुई थी मूर्त जड़ता,
किंतु बरबस आज मैं झरता, बिखरता,
है निछावर प्रेम पर संसार मेरा;
प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

२५

प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

जानता हूँ दूर है नगरी प्रिया की,
पर परीक्षा एक दिन होनी हिया की,
प्यार के पथ की थकन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

आग ने मानी न बाधा शैल-वन की,
गल रही भुज पाश में दीवार तन की,
प्यार के दर पर दहन भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

साँस में उत्तप्त आँधी चल रही है,
किंतु मुझको आज मलयानिल यही है,
प्यार के शर की शरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

तृप्ति क्या होगी अधर के रस कणों से,
खींच लो तुम प्राण ही इन चुंबनों से,
प्यार के क्षण में मरण भी तो मधुर है;
प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

२६

इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत ।

की कमल ने सूर्य-किरणों की प्रतीक्षा,
ली कुमुद की चाँद ने रातों परीक्षा,
इस लगन को, प्राण, पागलपन कहो मत ;
इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत ।

मेह तो प्रत्येक पावस में बरसता,
पर पपीहा आ रहा युग-युग तरसता,
प्यार का है, प्यास का क्रंदन कहो मत ;
इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत ।

कूक कोयल पूछती किसका पता है,
वह बहारों की सदा से परिचिता है,
इस रटन को मौसमी गायन कहो मत ;
इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत ।

विश्व की दो कामनाएँ थीं विचरतीं,
एक थी बस दूसरे की खोज करती,
इस मिलन को सिर्फ़ भुजबंधन कहो मत ;
इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत ।

२७

आज रिमझिम मेघ, रिमझिम हैं नयन भी।

पास मेरे तुम, तुम्हारे पास मस्ती,
बादलों की गोद में बिजली विहँसती,
मैं भरा-उँमडा, भरा-उँमडा गगन भी ;
आज रिमझिम मेघ, रिमझिम हैं नयन भी।

कौन कोना है गगन का आज सूना,
कौन कोना प्राण-मन का आज सूना,
पर बरसता मैं, बरसता है गगन भी ;
आज रिमझिम मेघ, रिमझिम हैं नयन भी।

अश्रु दुख के जबकि अपना हाथ भीगे,
अश्रु सुख के जबकि कोई साथ भीगे,
भीगतीं तुम, भीगती जाती अवनि भी ;
आज रिमझिम मेघ, रिमझिम हैं नयन भी।

प्यार का यह भार लेना भी मधुर है,
प्यार का यह भार देना भी मधुर है,
ले रही है भार अंबर का अवनि भी ;
आज रिमझिम मेघ, रिमझिम हैं नयन भी।

२८

मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

मौन मुखरित हो गया, जय हो प्रणय की,
पर नहीं परितृप्त है तृष्णा हृदय की,
पा चुका स्वर, आज गायन खोजता हूँ ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो,
उम्र इन उद्‌भ्रांत घड़ियों की बड़ी हो,
पा गया तन, आज मैं मन खोजता हूँ ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो,
किंतु मेरे प्राण में संतोष भर दो,
मधु मिला है, मैं अमृतकण खोजता हूँ ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

जी उठा मैं, और जीना प्रिय बड़ा है,
सामने, पर, ढेर मुरदों का पड़ा है,
पा गया जीवन, सजीवन खोजता हूँ ;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूँ ।

२६

प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे।

फूल मिलते रोक ही रखते रिझाते,
शूल हैं प्रतिपल मुझे आगे बढ़ाते,
इस डगर के शूल भी अनुकूल मेरे;
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे।

खोजते मकरंद जा पहुँचा मरुस्थल,
किंतु मेरी आँख का सुख-सार परिमल,
बन चुकी थी रास्ते की धूल मेरे;
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे।

ज़िंदगी भर, मानता, काँटे बटोरे,
क्या नहीं स्वागत मुहब्बत के निहोरे,
पंखुरी से होड़ लेते शूल मेरे;
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे।

जग मुझे टेढ़ी नज़र से देखता है,
और, लो, पाषाण मुझपर फेंकता है,
जो उसे पत्थर वही तो फूल मेरे;
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे।

३०

जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी।

बाँह तुमने डाल दी ज्यों फूल माला,
संग में, पर, नाग का भी पाश डाला,
जानता गलहार हूँ, ज़ंजीर को भी;
जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी।

है अधर से कुछ नहीं कोमल कहीं पर,
किंतु इनकी कोर से घायल जगत भर,
जानता हूँ पंखुरी, शमशीर को भी;
जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी।

कौन आया है सुरा का स्वाद लेने,
जो कि आया है हृदय का रक्त देने,
जानता मधुरस, गरल के तीर को भी;
जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी।

तीर पर जो उठ लहर मोती उगलती,
बीच में वह फाड़कर जबड़े निगलती,
जानता हूँ तट, उदधि गंभीर को भी;
जानता हूँ प्यार, उसकी पीर को भी।

३१

शूल तो जैसे विरह वैसे मिलन में।

थी मुझे घेरे बनी जो कल निराशा,
आज आशंका बनी, कैसा तमाशा,
एक से हैं एक बढ़कर, पर, चुभन में ;
शूल तो जैसे विरह वैसे मिलन में।

देखकर नीरस गगन रोया पपीहा,
मेह में भी तो कहीं खोया पपीहा,
फ़र्क़ पानी से नहीं पड़ता लगन में ;
शूल तो जैसे विरह, वैसे मिलन में।

आम पर तो मंजरी पर मंजरी है,
दर्द से आवाज़ कोयल की भरी है,
कब समाए स्वप्न मधुऋतु के सेहन में ;
शूल तो जैसे विरह वैसे मिलन में।

फूल को ले चोंच में बुलबुल बिलखती,
एक अचरज से उसे दुनिया निरखती,
वह बदल पाई नहीं अब तक सुमन में ;
शूल तो जैसे विरह वैसे मिलन में।

३२

प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसीका ।

प्यास होती तो सलिल में डूब जाती,
वासना मिटती न तो मुझको मिटाती,
पर नहीं अनुराग है मरता किसीका ;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसीका ।

तुम मिलीं तो प्यार की कुछ पीर जानी,
और ही मशहूर दुनिया में कहानी,
दर्द कोई भी नहीं हरता किसीका ;
प्यार से,प्रिय, जी नहीं भरता किसीका ।

पाँव बढ़ते, लक्ष्य उनके साथ बढ़ता,
और पल को भी नहीं यह क्रम ठहरता,
पाँव मंज़िल पर नहीं पड़ता किसीका ;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसीका ।

स्वप्न से उलझा हुआ रहता सदा मन,
एक ही इसका मुझे मालूम कारण,
विश्व सपना सच नहीं करता किसीका ;
प्यार से, प्रिय, जी नहीं भरता किसीका ।

३३

गीत मेरे, देहरी के दीप-सा बन।

एक दुनिया है हृदय में, मानता हूँ,
वह घिरी तम से, इसे भी जानता हूँ,
छा रहा है किंतु बाहर भी तिमिर घन ;
गीत मेरे, देहरी के दीप-सा बन।

प्राण की लौ से तुझे जिस काल वारूँ,
और अपने कंठ पर तुझको सँवारूँ,
कह उठे संसार, आया ज्योति का क्षण ;
गीत मेरे, देहरी के दीप-सा बन।

दूर कर मुझमें भरी तू कालिमा जब,
फैल जाए विश्व में भी लालिमा तब,
जानता सीमा नहीं है अग्नि का कण ;
गीत मेरे, देहरी के दीप-सा बन।

जग विभामय तो न काली रात मेरी,
मैं विभामय तो नहीं जगती अँधेरी,
यह रहे विश्वास मेरा, यह रहे प्रण ;
गीत मेरे, देहरी के दीप-सा बन।

मिलन यामिनी

मध्य भाग

१

मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरब से सुरभित
जो सोना शुभ्र-सलोना नित्य बरसता है,
उसको कोई बस प्रात किरण मत कह बैठे ।

(१)

जब कोई अपने कोटि करों को कर बाहर
अपने तप का चिर संचित कोष लुटाता है,
जब उसका सौरभ-यश कलि-कुसुमों के मुख से
विस्तृत बसुधा के कण-कण में छा जाता है,

तब जाकर तम का काला, भारी, भयकारी
पर्दा ऊपर को उठता और सिमटता है;

इतने उत्सर्गों, उल्लासों का यह अवसर,
अचरज है मुझको, कैसे प्रति दिन आता है।

कवि वह है जिसके मन को चोट पहुँचती है
जब होती जग में सुंदरता की अवहेला,
अनजाने भी अपमान किसीका हो जाता,
अनजाने भी अपराध कभी हो जाते हैं;

मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरब से सुरभित
जो सोना शुभ्र-सलोना नित्य बरसता है,
उसको कोई बस प्रात किरण मत कह बैठे।

(२)

रजनी में आँखें सपनों से बहला भी लो,
दिन देन दूसरी ही कुछ माँगा करता है,
देखें अँधियारा चीर निकलता है कोई,
देखें कोई अंतर की पीड़ा हरता है,

सारी आशा-प्रत्याशाओं की परवशता
में मन गलकर निर्मम बूँदों में ढल जाता,

देखें मिलकर क्या देता जबकि प्रतीक्षा में
पलकों का आँचल मुक्ताहल से भरता है,

कवि वह है जिसके उर में आहें उठती हैं
जब होती मिलनातुर घड़ियों की अवहेला,
आँसू का कुछ भी मोल नहीं बाज़ारों में,
क्यों इस कारण कोई उसका उपहास करे;

मैं गाता हूँ इसलिए कि विरही के दृगमें
जो बिंदु सुधा का सिंधु समेट छलकता है,
उसको कोई खारा जलकण मत कह बैठे।

मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरब से सुरभित
जो सोना शुभ्र-सलोना नित्य बरसता है,
उसको कोई बस प्रात किरण मत कह बैठे ।

(३)

जब जगती छाती में अभाव की चेतनता
तब निखिल सृष्टि का मूल केंद्र ही हिलता है,
वह ठंडी साँसें खींच बिलख तब उठती है
जब एकाकी को अपना संगी मिलता है,
जलते अधरों कुछ खोज रही-सी बाँहों में
धरती की सारी बेचैनी ज़ाहिर होती,
जब प्राणों का विनिमय प्राणों से होता है
अंबर के दिल का पंकज ही तब खिलता है,

कवि वह है जिसका अंतर विगलित होता है
जब होती जग में प्यास-प्रणय की अवहेला,
शब्दों की निर्धन दुनिया में अक्सर होता
कुछ कहते हैं पर मतलब कुछ से होता है,

मैं गाता हूँ इसलिए कि प्रेमी के मन में
जो प्यार अनंत, अपार, अगाध उमड़ता है,
उसको कोई व्यामोह-व्यसन मत कह बैठे ।

मैं गाता हूँ इसलिए कि पूरब से सुरभित
जो सोना शुभ्र-सलोना नित्य बरसता है,
उसको कोई बस प्रात किरण मत कह बैठे ।

२

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।

(१)

तम कहता है मुझ महानिशा
की दिशा नहीं तुम पाओगे,
ज़्यादा संभव है भूल-भटक
फिर उसी जगह आ जाओगे,

थे चले जहाँ से पहले दिन
मन में तूफ़ानी जोश लिए—

कंचन की नगरी में जाकर
माणिक के दीप जलाओगे !

है बहुत सिखाया जगती के
कड़ुए अनुभव ने पर अब भी—

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही ।

(२)

जो भेंट चला था मैं लेकर
हाथों में कब की कुम्हलाई,
नयनों ने सींचा उसे बहुत
लेकिन वह फिर भी मुरझाई,

तब से पथ-पुष्पों से निर्मित
कितनी मालाएँ सूख चुकीं,

जिस मग से मैं आया उसपर
पाओगे बिखरी-बिखराई;

कुम्हला न सकी, मुरझा न सकी
लेकिन अर्चन की अभिलाषा,

मैं चुनता हूँ हर फूल अटल विश्वास लिए,
ये पूज न पाएँ प्रेय चरण लेकिन दुनिया
इनकी श्रद्धा को एक समय पूजेगी ही।

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही ।

(३)

जब इस पथ पर थे पाँव दिए
तब चीख़ पड़ा था यों अंबर—
इसकी मंज़िल पाई जाती
केवल मरकर, केवल मिटकर !

फिर भी न डरा, हिचका, झिझका,
मेरा मन बंदा सैलानी;

ज़िंदा रहना क्या इतना ही
बस डोले साँसों का लंगर !

है मेरा पूरा सफ़र नपा
मेरी छाती की धड़कन से—

मैं लेता हूँ हर साँस अमर विश्वास लिए,
मैं पहुँच न पाऊँ जीते जी अपनी मंज़िल,
पर मरने पर मंज़िल मुझ तक पहुँचेगी ही ।

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही ।

(४)

अज्ञात नहीं है यह मुझको
गाया करता निशि-दिन सागर,
गाया करता दिन-रात अनिल
हरहर-हरहर, मरमर, मरमर;

जो मौन महा संगीत गगन
को पुलकाकुल नित रखता है,

उससे भी मैं चिर परिचित हूँ—
लेकिन मेरा भी अपना स्वर ।

मेरी सत्ता का अंश अमर
यह क्षीण सबों से होकर भी।

मैं गाता हूँ हर गीत मधुर विश्वास लिए,
लहराती अंबर पर, तारों से टकराती
ध्वनि पास तुम्हारे एक समय गूँजेगी ही।

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए,
ऊबड़-खाबड़ तम की ठोकर खाते-खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।

३

प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।

(१)

यह वह पाप जिसे करने से
भेद भरा परलोक डराता,
यह वह पाप जिसे कर कोई
कब जग के दृग से बच पाता,

यह वह पाप झगड़ती आई
जिससे बुद्धि सदा मानव की,
यह वह पाप मनन भी जिसका
कर लेने से मन शरमाता;

तन सुलगा, मन द्रवित, भ्रमित कर
बुद्धि, लोक, युग सब पर छाता,

हार नहीं स्वीकार हुआ तो
प्यार रहेगा ही अनजाना।

प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।

(२)

डूब किनारे जाते हैं जब
नद्दी में जोबन आता है,
कूल-तटों में बंदी होकर
लहरों का दम घुट जाता है,

नाम दूसरा केवल जगती
ज़ंग लगी कुछ ज़ंजीरों का,

जिनके अंदर तान-तरंगें
उनका जग से क्या नाता है;

मन के राजा हो तो मुझसे
लो वरदान अमर यौवन का,

नहीं जवानी उसने जानी
जिसने पर का बंधन जाना।

प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।

(३)

फूलों से, चाहे आँसू से
मैंने अपनी माला पोही,
किंतु उसे अर्पित करने को
बाट सदा जीवन की जोही,

गईं मुझे ले मृत्यु भुलावा
दे अपनी दुर्गम घाटी में,

किंतु वहाँ पर भूल-भटककर
खोजा मैंने जीवन को ही;

जीने की उत्कट इच्छा में
था मैंने, 'आ मौत' पुकारा।

वर्ना मुझको मिल सकता था
मरने का सौ बार बहाना।

प्यार, जवानी, जीवन इनका
जादू मैंने सब दिन माना।

४

(१)

वहती है मधुवन में अब पतझर की बयार ।

जिनकी छाया में काट दिए थे दिन दुख के,
जिनकी छाया में देखे थे सपने सुख के,

अब इने-गिने उन पत्तों के हैं दिवस चार ।
वहती है मधुवन में अब पतझर की बयार ।

(२)

देखो पीलापन इनपर छाया जाता है,
मधुवन का मधुवन, लो, मुरझाया जाता है,
ले गया काल इनकी सब श्री-सुखमा उतार,
वहती है मधुवन में अब पतझर की बयार।

(३)

जो एक डाल पर एक साथ झूले-डोले,
जो एक साथ प्रातः किरणों की जय बोले,
वे अलग-थलग गिरते अपनी सुध-बुध बिसार,
बहती है मधुवन में अव पतझर की बयार।

(४)

पीले पत्तों के नीचे अंकुर की लाली,
नूतन जीवन का चिह्न लिए डाली-डाली,
तरुवर-तरुवर पर लक्षित यौवन का उभार,
बहती है मधुवन में अव पतझर की बयार।

(५)

जिन झोंकों से कुम्हलाए पत्ते झरते हैं,
उनसे ही बल नव पल्लव संचित करते हैं,
जिनसे लुटता, उनसे ही बँटता भी सिंगार,
बहती है मधुवन में अब पतझर की बयार।

(६)

सौ बार शिशिर मधुवन के आँगन में आए,
पर वह जादू की शक्ति न मधुवन से जाए,
जो नूतन से करती पुराण का परिष्कार,
बहती है मधुवन में अब पतझर की बयार।

५

पतझर से डरे जिसके उर में
नव यौवन का उन्माद न हो ।

(१)

पीले मुरझाए चेहरों में
यौवन ही लाली भरता है,
कितनी ही बार लुटे लेकिन
श्री-शोभा संचित करता है;

पतझर की पतित करतूतों स
तरु-तरु परिचित, डाली-डाली;

पतझर से डरे जिसके उर में
नव यौवन का उन्माद न हो।

(२)

वह देखो पलाशों ने वन से
उठ क्रांति पताका फहराई,
वह देखो उदास खड़ी डालों
पर क्या हरियाली गहराई,

वह देखो बसंती फूलों के
ऊपर मँडराती अलिमाला;

पतझर से डरे जिसको मधुऋतु
के सौ सपनों की याद न हो।

पतझर से डरे जिसके उर में
नव यौवन का उन्माद न हो।

(३)

वह सुन लो नया स्वर कोकिल का
है गूँज रहा अमराई में,
वह सुन लो नक़ल होती उसकी
उपवन, बीथी, अँगनाई में;

हर जीवन के स्वर की प्रतिध्वनि
आती है अगणित कंठों से;

६

(१)

वह कूकी, लाई साँस नई मधुवन में।

पीलेपन में बदल गई थी
पत्तों की हरियाली,
छोड़ रही थी वह भी क्षण-क्षण
तरु की डाली-डाली,

शाखा के कंकाल खड़े थे
गगन-पटल के आगे;
वह कूकी, लाई साँस नई मधुवन में

पतझर के सूनेपन से डरे
जिसके अंतर में नाद न हो।

पतझर से डरे जिसके उर में
नव यौवन का उन्माद न हो।

(२)

कूक एक——जड़ जग के अंदर
जीवन रस लहराया,
कूक एक——तरुओं के तन का
रोम-रोम फहराया,

अंकुर-अंकुर की आँखों में
सौ बसंत के सपने,
वह कूकी, लाई आस नई मधुवन में।
वह कूकी, लाई साँस नई मधुवन में।

(३)

कूक एक——कल्पना अनूठी
जाग उठी आँखों में,
चढ़ते यौवन के अल्हड़ पग
बदल गए पाँखों में,

चला समीरण मंजरियों का
लेकर सरस निमंत्रण,
वह कूकी, लाई बास नई मधुवन में।
वह कूकी, लाई साँस नई मधुवन में।

(४)

कूक एक—ताज़ी हो आई
मन में बात पुरानी,
कूक एक—रुक गई ठिठककर
ढलती हुई जवानी,

मदिरालय ने कहा, एक-दो
घूँट और पीता जा—
वह कूकी, लाई प्यास नई मधुवन में।
वह कूकी, लाई साँस नई मधुवन में।

७

सहसा बिरवों में पात लगे,

सहसा बिरही की आग जगी ।

(१)

जब मने मरकत पत्रों को
पियराते, मुरझाते देखा,
जब मैंने पतझर को बरबस
मधुवन में धँस जाते देखा,

तब अपनी सूखी लतिका पर
पछताते मुझको लाज लगी,

जब मैंने तरु-कंकालों को
अपने से भय खाते देखा,

पर ऐसी एक बयार बही,
कुछ ऐसा जादू-सा उतरा,

जिससे बिरवों में पात लगे,
जिससे अंतर में आह जगी।

सहसा बिरवों में पात लगे,
सहसा बिरही की आग जगी।

(२)

कुछ अनजाने सुख से सिहरीं
सब सूखी-भूखी शाखाएँ,
उनपर ऐसी लाली दौड़ी
जैसे गालों पर शरमाए

उस बाला के जिसका कोई
मुख चुंबन पहली बार करे;
यह देख समा मेरी सहमी
आँखों में आँसू भर आए;

क्या था उस मादक लाली में,
क्या, उस मोहक हरियाली में,

जिससे छाती में तीर चुभे,
जिससे अंतर में चाह जगी।

सहसा बिरवों में पात लगे,
सहसा बिरही की आग जगी।

(३)

जब अखिल प्रकृति ही बैठी थी
सेती सूनेपन की दुनिया,
तब अचरज क्या जो चुप होकर
बैठा यह गीतों का गुनिया,

कोयल कूकी जैसे उसको
जीवन का कोई भेद मिला,

कानों में फिर से गूँजीं कुछ
भूली-भूली-सी प्रतिध्वनियाँ;

क्या था उस कूक बहारी में,
क्या, उस मधुमय किलकारी में,

जिससे साँसों में राग उठा,
जिससे अंतर में डाह जगी।

सहसा बिरवों में पात लगे,
सहसा बिरही की आग जगी।

८

डालें पलाश की फूट पड़ीं,

प्रिय, छूट गया धीरज मेरा ।

(१)

मैंने तो यह गुन रक्खा था
जब साँस बसंती आएगी,
तब अपने सौ बरदानों में
वह साथ तुम्हें भी लाएगी,

पत्ते-पत्ते ने टूट यही
मेरे कानों में बात कही,

कब समझा था मेरी आशा
यों अपने मुँह की खाएगी;

यह सोच, बहार नहीं आई,
धोखे में अपने को रक्खा;

सहसा रोमावलि सिहर उठी,
प्रिय छूट गया धीरज मेरा;

डालें पलाश की फूट पड़ीं,
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा ।

(२)

मैंने तो यह गुन रक्खा था
जब भृंगों की ध्वनि गूँजेगी,
तब नीरव घड़ियों में सेई
मेरी साधें भी पूजेंगी,

हर गूँगे स्वर के अंदर से
स्वर एक निरंतर सुनता था,

रुनझुन करती वह आती है
जो पीर तुम्हारी बूझेगी,

कितना कानों को रूँधूँ मैं,
बौरे आमों पर बौराए

भौंरों की पाँतें टूट पड़ीं
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा;

डालें पलाश की फूट पड़ीं,
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा ।

(३)

शाख़ों ने कल्ले फोड़े पर
देरी उनके हरियाने में,
कुछ काल अभी तक बाक़ी है
सचमुच मधुऋतु के आने में,

अलि आतुर गंध-पराग रहित
कलियों से भी बँध जाते हैं,

मन मान विलंब अभी कुछ है
खगकुल के खुलकर गाने में;

अपने को बहला रखने की
आख़िर कुछ हद भी होती है,

कोकिल कुहु-कुहुकर कूक पड़ी
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा,

डालें पलाश की फूट पड़ीं,
प्रिय, छूट गया धीरज मेरा ।

९

अनगिनत बसंती फूलों के
गुच्छों में गिनती के पत्तों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास !

(१)

यौवन की पागल घड़ियों में
देखा था मैंने यह सपना,
मैं संग प्रिया के बैठा हूँ
सिर पर सुमनों का छत्र तना,

पत्रों की निर्धन छाया में
साधारण दुनिया मिलती है,

मेरी वह साध पुराने को
यह सोने का संसार बना;

पर यह बहार भी इंतज़ार
का क़िस्सा बनकर जाती है;

अनगिनत बसंती फूलों के
गुच्छों में गिनती के पत्तों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास।

(२)

इन कंचन-पीले पुष्पों से
यदि भाग्य हमारे खिल पाते,
दो उमड़े-घुमड़े बादल के
टुकड़ों से यदि हम मिल पाते,

हर चितवन में, हर चुंबन में,
हर चुंबक-से आलिंगन में,

प्रेयसि, बरबस कितने रस के
मदमाते निर्झर बह जाते !

मन की मिठास ही घुट-घुटकर
भीतर-भीतर विष बनती है:

अनगिनत बसंती फूलों के
गुच्छों में मधुपूरित छत्तों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास ।

अनगिनत बसंती फूलों के
गुच्छों में गिनती के पत्तों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास।

(३)

मेरी अभिलाषाएँ बिखरीं
कुसुमों की सुंदरता बनकर,
मेरे चिंतन के क्षण कितने
निखरे छाया में छन-छनकर,

डालें भुज हैं जिनको मेरी
आशाओं ने फैलाए हैं,

विश्वास अटल मेरा बैठा
इसकी जड़ की दृढ़ता बनकर;

यह वृक्ष नहीं जिसपर पतझर
मधुऋतु का शासन चलता है;

।त्याशाओं के झूलों में
भूला-भूला स्वप्निल तत्त्वों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास ।

अनगिनत बसंती फूलों के
गुच्छों में गिनती के पत्तों
का अमलतास फिर एक बार
कर जाता है मुझको उदास ।

१०

इन चिकने, ताज़े, हरे, नए
पत्तों के साए में, सुमने,
फिर प्यार नया हो सकता है।

(१)

हर दंत समय का जो लगता,
मानो, विष दंत नहीं होता,
दुख मानव के मन के ऊपर
सब दिन बलवंत नहीं होता,

आहें उठतीं, आँसू झड़ते,
सपने पीले पड़ते लेकिन

जीवन में पतझर आने से
जीवन का अंत नहीं होता;

यौवन-मधुऋतु का स्वर उठकर
अंदर से मुझसे कहता है,

इन चिकने, ताज़े, हरे, नए
पत्तों के साए में, सुमने,
फिर प्यार नया हो सकता है।

(२)

अंबर ने मधुवन से पूछा,
तू आज बना मस्ताना क्यों,
बोला, कोयल से यह पूछो,
उसका पुरजोश तराना क्यों,

उसने पिक से यह प्रश्न किया,
बोली, इन डालों से पूछो,

नूतन पत्तों के साथ सजीं
तजकर परिधान पुराना क्यों,

डालों ने छाया में बैठे
हमको-तुमको बस दिखलाया;

दो दूर दिलों के मिलने से
भी इतना अंतर भरता है,
संसार नया हो सकता है।

इन चिकने, ताज़े, हरे, नए
पत्तों के साए में, सुमने,
फिर प्यार नया हो सकता है।

(३)

हम अपनी मस्ती में बहके
मधुबात बही बहकी-बहकी,
चुंबन के स्वर संकेतों पर
बन की सारी चिड़ियाँ चहकीं,
अनुकरण हमारे शब्दों का
अस्फुट, लो, पल्लव दल करते,
साँसों से साँसें मिलनी थीं
खुलकर, खिलकर कलियाँ महकीं;

मायूस नज़र से कब किसने
दुनिया की सच्चाई देखी;

आशा की पुलकित आँखों से
जग, जीवन और ज़माने का
दीदार नया हो सकता है।

इन चिकने, ताज़े, हरे, नए
पत्तों के साए में, सुमने,
फिर प्यार नया हो सकता है।

११

गरमी में प्रातःकाल पवन
बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

(१)

जब मन से लाखों बार गया-
आया सुख सपनों का मेला,
जब मैंने घोर प्रतीक्षा के
युग का पल-पल जल-जल झेला,

मिलने के उन दो यामों ने
दिखलाई अपनी परछाईं,

वह दिन ही था बस दिन मुझको,
वह बेला थी मुझको बेला;

उड़ती छाया-सी वे घड़ियाँ
बीतीं कबकी लेकिन तब से,

गरमी में प्रातःकाल पवन
बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

(२)

तुमने जिन सुमनों से उस दिन
केशों का रूप सजाया था,
उनका सौरभ तुमसे पहले
मुझसे मिलने को आया था,

वह गंध गई गठबंध करा
तुमसे, उन चंचल घड़ियों से,

उस सुख से जो उस दिन मेरे
प्राणों के बीच समाया था;

वह गंध उठा जब करती है
दिल बैठ न जाने जाता क्यों;

गरमी में प्रातःकाल पवन
प्रिय ठंडी आहें भरता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

गरमी में प्रात:काल पवन
बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

(३)

चितवन जिस ओर गई उसने
मृदु फूलों की वर्षा कर दी,
मादक मुसकानों ने मेरी
गोदी पंखुरियों से भर दी,

हाथों में हाथ लिए, आए
अंजलि में पुष्पों के गुच्छे,

जब तुमने मेरे अधरों पर
अधरों की कोमलता धर दी,

कुसुमायुध का शर ही मानो
मेरे अंतर में पैठ गया !

गरमी में प्रात:काल पवन
कलियों को चूम सिहरता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

गरमी में प्रात:काल पवन
बेला से खेला करता जब
तब याद तुम्हारी आती है।

१२

ओ पावस के पहले बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे मन-प्राणों पर बरसो ।

(१)

यह आशा की लतिकाएँ थीं
जो बिखरीं आकुल-व्याकुल सी,
यह स्वप्नों की कलिकाएँ थीं
जो खिलने से पहले झुलसीं,

यह मधुवन था, जो सूना-सा
मरुथल दिखलाई पड़ता है,

इन सूखे कूल-किनारों में
थी एक समय सरिता हुलसी;

आँसू की बूँदें चाट कहीं
अंतर की तृष्णा मिटती है;

ओ पावस के पहले बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे मन-प्राणों पर बरसो।

(२)

मेरे उच्छ्वास बनें शीतल
तो जग में मलयानिल डोले,
मेरा अंतर लहराए तो
जगती अपना कल्मष धो ले,

सतरंगा इंद्रधनुष निकले
मेरे मन के धुँधले पट पर,

तो दुनिया सुख की, सुखमा की
मंगल वेला की जय बोले;

सुख है तो औरों को छूकर
अपने से सुखमय कर देगा,

ओ वर्षा के हर्षित बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे अरमानों पर बरसो।

ओ पावस के पहले बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे मन-प्राणों पर बरसो।

(३)

सुख की घड़ियों के स्वागत में
छंदों पर छंद सजाता हूँ,
पर अपने दुख के दर्द भरे
गीतों पर कब पछताता हूँ,

जो औरों का आनंद बना
वह दुख मुझपर फिर-फिर आए,
रस में भीगे दुख के ऊपर
मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ;

कंठों से फूट न जो निकले
कवि को क्या उस दुख से, सुख से;

ओ बारिश के बेख़ुद बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे स्वर-गानों पर बरसो।

ओ पावस के पहले बादल,
उठ उमड़-गरज, घिर घुमड़-चमक
मेरे मन-प्राणों पर बरसो।

१३

चाँदनी रात के आँगन में
कुछ छिटके-छिटके-से बादल,
कुछ भटका-भटका-सा मन भी ।

(१)

जब सारी दुनिया सोई है
तब नभ-मंडल पर चाँद जगा,
कुछ सपनों में डूबा-डूबा,
कुछ सपनों में उमगा-उमगा,

उसके पथ में अनचाहे-से
कुछ बेबस बादल के टुकड़े,

पर पूजन, स्नेह-समर्पण से
कब सुंदरता को दाग़ लगा;

जैसे ये बादल के टुकड़े
सुखमा का आँचल थामे से,

अनजान किसी पर न्योछावर
क्या शोभन, स्वागतमय होगा
मेरे उर का पागलपन भी ?

चाँदनी रात के आँगन में
कुछ छिटके-छिटके-से बादल,
कुछ भटका-भटका-सा मन भी

(२)

रह-रहकर यह बादलमाला
अब ठंडी साँसें लेती है,
क्या शीघ्र सफल होने को हैं
आशाएँ जो यह सेती है ?
रंगीन मलीन हुई सहसा;
वे यों ही जगमग कर उठते
करुणा-ममता की छोह भरी
किरणें जिनको छू देती हैं;

जैसे बिखरापन बादल का
निखरा सतरंगा साज पहन;

सध सप्त सुरों में वीणा के
क्या गीत कभी बन पाएगा
मेरे जीवन का क्रंदन भी ?

चाँदनी रात के आँगन में
कुछ छिटके-छिटके-से बादल,
कुछ भटका-भटका-सा मन भी ।

(३)

झर-झर, लो, वृष्टि लगी होने
अंबर के दृग के कोने से,
मन क्यों यों गल-ढल जाता है
अभिलाषा पूरी होने से,

अंतर में उमड़े भावों का
इतना ही तो इतिहास नहीं,

मोती की फ़सलें उगती हैं
आँसू की बूँदें बोने से;

जैसे बादल का विगलित मन
धरती पर गिर वरदान हुआ,

जगती की जलती छाती पर
क्या शीतल रस बन बरसेगा
मेरे नयनों का जल-कण भी ?

चाँदनी रात के आँगन में
कुछ छिटके-छिटके-से बादल,
कुछ भटका-भटका-सा मन भी ।

१४

तुम आओगी जिस दिन होगी
उस रात हमारी दीवाली।

(१)

दीवाली की खुशियाली में
जग दीपक-पंक्ति जलाता है,
उजियाले में कुछ ऐसा है
सबकी आँखों को भाता है,

बाहर का तम सहमा-सहमा
आभा की इस रँगरेली से,

मिट्टी के दीपों से पर कब
मन का अँधियाला जाता है;

अंबर की तारकमाला भी
कर इसको दूर नहीं पाई,
धरती की सबसे दिव्य दमक
पर भी रहती छाया काली।

तुम आओगी जिस दिन होगी
उस रात हमारी दीवाली।

(२)

मनुहार विहंगम करते हैं
तब सूर्य किरण अँगड़ाती है,
जब क्षितिज उसाँसें भरता है
तब चंद्र किरण मुसकाती है,

जब भीग-नहा चुकता अंबर
अपने आँसू की धारा में,

तब क्षण भर को चपला चंचल
अपना मुखड़ा दिखलाती है;

मनुहार, उसाँसें, आँसू से
कुछ और न जिसने नाम लिया,
उससे आवाहन करने पर
भी दूर तुम्हारी पग-लाली।

तुम आओगी जिस दिन होगी
उस रात हमारी दीवाली।

(३)

जुगनू की बूँद उजाले की
मिट्टी के कण दीपित करती,
दीपों की अवली जग-जगकर
घर-आँगन का मातम हरती,

बिजली बादल की छाती में
रखती है ज्वाला की बाती,

रवि-शशि-तारों की प्राण प्रभा
भू में, नभ में जीवन भरती,

पर बुझे हुए दिल जलते हैं
केवल मुसकानों की लौ से;
कुछ आस लगाए स्नेह-भरी
बैठी उर-अंतर की प्याली।

तुम आओगी जिस दिन होगी
उस रात हमारी दीवाली।

१५

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय ।

(१)

यह द्वार वही जिसने उसके
आते ही उसके पग चूमे,
ये गलियारे, दे गलबाँहीं
जिसमें हम हँस-हँसकर घूमे,
इन कमरों की दीवारों के
मुख होता तो वे रच देतीं
ऐसी कविता जिसको सुनकर
धरती नाचे, अंबर झूमे !

उसके बतियाने, गाने के
उसके हँसने के निर्मल स्वर--
से घर प्रतिपल गूँजा करता,
अंतर में है लहराती लय।

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय।

(२)

जब कल स्वागत कर विहँसा था
तो आज विदा दे रोया भी,
कुछ घड़ियों के अंदर-अंदर
मैंने क्या पाया, खोया भी,

अंदाज़ लगा सकना इसका
मेरे तो बस की बात नहीं,
अब तक हूँ मैं जैसे कोई
कुछ जागा भी, कुछ सोया भी;

कुछ-कुछ सच-सी, कुछ सपने-सी
बीती घटनाएँ लगती हैं,
लगता जैसे पी बैठा हूँ
कुछ-कुछ मधुमय, कुछ-कुछ विषमय।

वह एक दिवस को आई थी
पर कितने हर्ष-विषादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय।

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय

(३)

विश्वास न था मेरे मन को
आनेवाले अगले पल पर,
वह बोली, किसका 'आज' मधुर,
सबकी आशा, पगले, 'कल' पर,

कल का उसने मेरे आगे
कैसा बढ़िया ख़ाका खींचा,

स्वर्गों से स्वप्न उतरते थे
उसकी बातों पर झलमल कर;

उम्मीदें ऐसी बँधवा दीं
अब मैं बैठा रह सकता हूँ,
उनको सेता तब तक जब तक
लेता है अंतिम साँस समय।

वह एक दिवस को आई थी
पर कितने अद्भुत वादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय ।

वह एक दिवस को आई थी
पर कितनी मादक यादों से
भर गई भवन, भर गई हृदय ।

१६

मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता।

(१)

मेरी छाती के भीतर जो
जादू की साँसें चलती हैं,
उनके छूने से जग-युग की
निश्चल चट्टानें गलती हैं,

अपनी दो बाँहों के अंदर
मैं सरिता एक सँभाले हूँ,

मेरे अधरों पर आ-आकर
लहरें दिन-रात मचलती हैं;

मेरे पथ की बाधा बनकर
कोई कब तक टिक सकता था,
पर मैं ख़ुद ऊँचे बाँध उठा
अपने को उनमें भरमाता।

मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता।

(२)

रस-रूपमयी इस दुनिया पर
जब मेरी आँखें बिछ जातीं,
तब किसकी भौंहें तन करके
मेरी पलकों को डरपातीं,

कलियों की कोमलता छू लूँ,
छू लूँ मधुपों की मादकता,

यह कौन कहाँ से थामे है
जो नहीं उँगलियाँ बढ़ पातीं,

मधुवन का आज बुलावा है
पावों में कौन लिपटता है,
इन मृदु पर दृढ़ ज़ंजीरों से
किसने मेरा जोड़ा नाता।

मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता।

(३)

जब दिल विगलित हो जाता है
तब वह कैसे जम सकता है,
धारा को मोड़ भले ही दो
पर वेग कहाँ थम सकता है,

भू पर न चला इठलाता तो
किरणों पर नीर चढ़ेगा ही,
पर नभ के सूने आँगन में
वह कितने दिन रम सकता है,

यह रंग-बिरंगी जगती ही
मेरे मानस की अधिकारी,
झरना बनकर न बहा इसपर,
बादल बनकर रस बरसाता।

मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता।

१७

खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनों से

जो कि रुक सकता नहीं मैं——

(१)

काम ऐसा कौन जिसको
छोड़ मैं सकता नहीं हूँ,
कौन ऐसा, मुँह कि जिससे
मोड़ मैं सकता नहीं हूँ ?

आज रिश्ता और नाता
जोड़ने का अर्थ क्या है ?

शृंखला वह कौन जिसको
तोड़ मैं सकता नहीं हूँ ?

चाँद, सूरज भी पकड़
मुझको नहीं बिठला सकेंगे,
क्या प्रलोभन दे मुझे वे
एक पल बहला सकेंगे ?

जबकि मेरा वश नहीं
मुझपर रहा, किसका रहेगा ?

खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं--

(२)

उठ रहा है शोर-ग़ुल
जग में, ज़माने में, सही है,
किंतु मुझको तो सुनाई
आज कुछ देता नहीं है,

कोकिलो, तुमको नई ऋतु
के नए नग़मे मुबारक,
और ही आवाज़ मेरे
वास्ते अब आ रही है,

स्वर्ग परियों के स्वरों के
भी लिए मैं आज बहरा,
गीत मेरा मौन सागर
में गया है डूब गहरा;

साँस भी थम जाय जिससे
साफ़ तुमको सुन सकूँ मैं—

खींचतीं किन पीर-भीगे गायनों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं—

खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं—

(३)

है समय किसको कि सोचे
बात वादों की, प्रणों की,
मान के, अपमान के,
अभिमान के बीते क्षणों की,

फूल यश के, शूल अपयश
के बिछा दो रास्ते में,

घाव का भय, चाह किसको
पंखुरी के चुंबनों की;

मैं वुझाता हूँ पगों से
आज अंतर के अँगारे,
और वे सपने कि जिनको
कवि करों ने थे सँवारे,

आज उनकी लाश पर मैं
पाँव धरता आ रहा हूँ—

खींचतीं किन मौन दृग के जलकणों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं—

खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनों से
जो कि रुक सकता नहीं मैं—

१८

(१)

तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते ।

अंतस्तल के भाव बदलते
कंठस्थल के स्वर में,
लो, मेरी वाणी उठती है
धरती से अंबर में,

अर्थ और आखर के बल का
कुछ मैं भी अधिकारी,
तुमको मेरे मधुगान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते ।

(२)

अब मुझको मालूम हुई है
शब्दों की भी सीमा,
गीत हुआ जाता है मेरे
रुद्ध गले में धीमा,

आज उदार दृगों ने रख ली
लाज हृदय की जाती,
तुमको नयनों के दान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

(३)

आँख सुने तो आँख भरे दिल
के सौ भेद बताए,
दूर बसे प्रियतम को आँसू
क्या संदेश सुनाए,

भिगा सकोगी इनसे अपने
मन का कोई कोना ?
तुमको मेरे अरमान निमंत्रण देते ;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते।

(४)

कवियों की सूची से अब से
मेरा नाम हटा दो,
मेरी कृतियों के पृष्ठों को
मरुथल में बिखरा दो,

मौन बिछी है पथ में मेरी
सत्ता, बस तुम आओ,
तुमको कवि के बलिदान निमंत्रण देते;
तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते ।

१६

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,

उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद

मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

(१)

सूर्य जब ढलने लगा था कह गया था,
मानवो, ख़ुश हो कि दिन अब जा रहा है,
जा रही हैं स्वेद, श्रम की क्रूर घड़ियाँ,
औ' समय सुंदर, सुहाना आ रहा है,

छा गई है शांति खेतों में, वनों में
पर प्रकृति के वक्ष की धड़कन बना-सा,

दूर, अनजानी जगह पर एक पंछी
मंद लेकिन मस्त स्वर से गा रहा है,

औ' धरा की पीन पलकों पर विनिद्रित
एक सपने-सा मिलन का क्षण हमारा,
स्नेह के कंधे प्रतीक्षा कर रहे हैं;
झुक न जाओ और देखो उस तरफ़ भी—

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम ।

(२)

इस समय हिलती नहीं है एक डाली,
इस समय हिलता नहीं है एक पत्ता,
यदि प्रणय जागा न होता इस निशा में
सुप्त होती विश्व की संपूर्ण सत्ता,

वह मरण की नींद होती जड़-भयंकर
और उसका टूटना होता असंभव,
प्यार से संसार सोकर जागता है,
इसलिए है प्यार की जग में महत्ता,

हम किसी के हाथ में साधन बने हैं
सृष्टि की कुछ माँग पूरी हो रही है,
हम नहीं अपराध कोई कर रहे हैं,
मत लजाओ और देखो उस तरफ़ भी—

प्राण, रजनी भिंच गई नभ के भुजों में,
थम गया है शीश पर निरुपम रुपहरा चाँद,
मेरा प्यार बारंबार लो तुम ।

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम ।

(३)

पूर्व से पच्छिम तलक फैले गगन के
मन-फलक पर अनगिनत अपने करों से
चाँद सारी रात लिखने में लगा था
'प्रेम' जिसके सिर्फ़ ढाई अक्षरों से

हो अलंकृत आज नभ कुछ दूसरा ही
लग रहा है और लो जग-जग विहग दल
पढ़ इसे, जैसे नया यह मंत्र कोई,
हर्ष करते व्यक्त पुलकित पर, स्वरों से;

किंतु तृण-तृण ओस छन-छन कह रही है,
आ गई वेला विदा के आँसुओं की,
यह विचित्र विडंबना पर कौन चारा,
हो न कातर और देखो उस तरफ़ भी—

प्राण, राका उड़ गई प्रातः पवन में,
ढल रहा है क्षितिज के नीचे शिथिल-तन चाँद,
मेरा प्यार अंतिम बार लो तुम।

प्राण, संध्या झुक गई गिरि, ग्राम, तरु पर,
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिंदूरी चाँद,
मेरा प्यार पहली बार लो तुम।

(१)

अंबर के कोने-कोने में
तारों का संगीत समाए,
प्रलय घनों के गुरु गर्जन से
नभ का ओर-छोर हिल जाए,

तड़ित लास से, अट्टहास से
दसो दिशाएँ फिर-फिर काँपें,

प्रबल प्रभंजन का रव सनसन
वसुधा के कण-कण में छाए,

किंतु सकेगी भेद प्रकृति भी
कैसे अंतर का सूनापन,
कैसे हो सकता मन मेरा
विचलित जग के कोलाहल से।

मौन यामिनी मुखरित मेरी
मधुर तुम्हारी पग पायल से।

(२)

मेरे उच्छ्वासों से जाने
मधुऋतु ने कब धोखा खाया,
तरुओं में कब अंकुर फूटे
कोयल ने कब गीत सुनाया,

मेरे अंध तमस में जाने
कब किरणें भूले से आईं,

प्रात पवन ने कब सहलाकर
मेरा सोया स्वप्न जगाया,

अमर अभावों के आँगन में
जाने कब आशाएँ नाचीं,
जाने क़ब धुल गए नियति के
अंक अमिट नयनों के जल से।

मौन यामिनी मुखरित मेरी
मधुर तुम्हारी पग पायल से।

(३)

इस पायल की लय में मेरी
श्वासों ने निज लय पहचानी,
इस पायल की ध्वनि में मेरे
प्राणों ने अपनी ध्वनि जानी।

ताल दे रहा रोम-रोम है
तन का उसकी रुनुक-भुनुक पर,

इस अधीर मंजीर मुखर से
आज बाँध लो मेरी वाणी;

जीवन की यात्रा के सबसे
सच्चे साथी गीत रहे हैं;
मुझे खोजना है जग का मग
इन पग रागों के संबल से।

मौन यामिनी मुखरित मेरी
मधुर तुम्हारी पग पायल से।

२२

(१)

मधु पी लो, मौसम आज बड़ा प्यारा है ।

अठखेली करती चलती है
आज हवा मदमाती,
पत्ती-पत्ती गीत प्रीति का
झूम-झूमकर गाती,

उभर-उभर उठती सुख साँसों
से पृथिवी की छाती;
मधु पी लो, मौसम आज बड़ा प्यारा है ।

(२)

उड़े कहाँ जाते हैं नभ में
ये बादल के टुकड़े,
काश मूँद सकते ये जाकर
उन गुनियों के मुखड़े,

अंधकार में भी जिनके दृग
दोष हमारा तकते,
लेकिन ऐसों से यौवन कब हारा है ;
मधु पी लो, मौसम आज बड़ा प्यारा है ।

(३)

किसे सुनाई दे सकती है
उनकी निंदित वाणी,
आज प्यास का स्वर ऊँचा है
सुन लो, सुमुखि, सयानी,

आज स्वाति की बूँद खोजता
है कोई मतवाला,
शशि लाख बहाता अमृत की धारा है ;
मधु पी लो, मौसम आज बड़ा प्यारा है ।

(४)

आज चंद्रिका की मदिरा में
डूबे अनगिन तारे,
हमीं किनारे पर क्यों बैठें,
चलो चलें मँझधारे,

आज सतह पर रह जाने से
लाज नहीं बच सकती,
जीवन की तह ने हमको ललकारा है;
मधु पी लो, मौसम आज बड़ा प्यारा है।

२३

(१)

सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें।

अकस्मात यह बात हुई क्यों
जब हम-तुम मिल पाए,
तभी उठी आँधी अंबर में
सजल जलद घिर आए,

यह रिमझिम संकेत गगन का
समझो या मत समझो,
सखि, भीग रहा आकाश कि हम-तुम भीगें;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें।

(२)

इन ठंडे-ठंडे झोंकों से
मैं काँपा, तुम काँपीं,
एक भावना बिजली बनकर
दो हृदयों में व्यापी,

आज उपेक्षित हो न सकेगा
रसमय पवन-सँदेसा,
सखि, भीग रही बातास कि हम-तुम भीगें;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें।

(३)

मधुवन के तरुवर से मिलकर
भीगी लतर सलोनी,
साथ कुसुम के कलिका भीगी,
कौन हुई अनहोनी,

भीग-भीग पी-पीकर चातक
का स्वर कातर भारी,
सखि, भीग रही है रात कि हम-तुम भीगें;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें।

(४)

इस दूरी की मजबूरी पर
आँसू नयन गिराते,
आज समय तो था अधरों से
हम मधुरस बरसाते,

मेरी गीली साँस तुम्हारी
साँसों को छू आती,
सखि, भीग रहे उच्छ्वास कि हम-तुम भीगें ;
सखि, अखिल प्रकृति की प्यास कि हम-तुम भीगें ।

२४

बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में,

और कहो क्या बंधन मानूँ ।

(१)

यह घन कुंतल राशि नहीं है
पर्दा है जग की आँखों पर,

अधरों पर मधु विंदु नहीं है
आया रस का सिंधु सिमट कर,

श्वास नहीं, प्रश्वास नहीं है
मलयानिल के भावुक झोंके,

पुलकित रोमों में सुख मुखरित
तन की मिट्‌टी का मादक स्वर,

नयनों की यह जोत नहीं है,
यह है स्वर्गों का आमंत्रण,
लुब्ध, मुग्ध, लवलीन तुम्हीं में
अब किसका आकर्षण मानूँ;

बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में,
और कहो क्या बंधन मानूँ।

(२)

काल कृपाण उठाता जिसपर,
दान अभय का उसको देता,
मैं स्वरूप के भाग्य पटल पर
लिख देता, 'अमरत्व विजेता',

एक-एक क्षण को कर देता
हूँ मैं युग-युग का प्रतिद्वंदी,

अटल बनाता मैं यौवन को
जो केवल पल का अभिनेता;

तृषा-तृप्ति हों साथ जहाँ पर
ऐसा जग रचता रहता हूँ,
यह संघर्ष नहीं है तो फिर
और किसे संघर्षण मानूँ;

बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में,
और कहो क्या बंधन मानूँ।

(३)

बनकर आग नहीं पैठा जो
कब उसको स्वीकार किया है,
बनकर राग नहीं निकला जो
कब उसका इज़हार किया है,

स्थान दिया कब उसको मैंने
मथ न दिया जिसने मन मेरा,

प्राण न बाज़ी पर हों जिसमें
कब ऐसा व्यापार किया है;

बिज्जु-वितान, प्रचंड बवंडर
मेरे मन के मीत पुराने,
जग पगडंडी पर के कैसे
दंड, नियम, अनुशासन मानूँ;

बद्ध तुम्हारे भुजपाशों में,
और कहो क्या बंधन मानूँ।

२५

(१)

सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

अंबर-अंतर गल धरती का
अंचल आज भिगोता,
प्यार पपीहे का पुलकित स्वर
दिशि-दिशि मुखरित होता,

और प्रकृति-पल्लव-अवगुंठन
फिर-फिर पवन उठाता,
यह मदमातों की रात नहीं सोने की;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की।

(२)

हैं अनगिन अरमान मिलन की
ले दे के दो घड़ियाँ,
झूल रहीं पलकों पर कितने
सुख सपनों की लड़ियाँ,

एक-एक पल में भरना है
युग-युग की चाहों को,
सखि, यह साधों की रात नहीं सोने की ;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की ।

(३)

बाट जोहते इस रजनी की
वज्र कठिन दिन बीते,
किंतु अंत में दुनिया हारी
और हमी तुम जीते,

नर्म नींद के आगे अब क्यों
आँखें पाँख झुकाएँ,
सखि, यह रातों की रात नहीं सोने की ;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की ।

(४)

वही समय जिसकी दो जीवन
करते थे प्रत्याशा,
वही समय जिसपर अटकी थी
यौवन की सब आशा,

इस वेला में क्या-क्या करने
को हम सोच रहे थे,
सखि, यह वादों की रात नहीं सोने की ;
सखि, यह रागों की रात नहीं सोने की ।

२६

(१)

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

अरमानों की एक निशा में
होती हैं कै घड़ियाँ,
आग दबा रक्खी है मैंने
जो छूटीं, फुलझड़ियाँ,

मेरी सीमित भाग्य परिधि को
और करो मत छोटी,
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

(२)

अधर पुटों में बंद अभी तक
थीं अधरों की वाणी,
'हाँ-ना' से मुखरित हो पाई
किसकी प्रणय कहानी,

सिर्फ़ भूमिका थी जो कुछ
संकोच-भरे पल बोले,
प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ ।

(३)

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों
में रजनी की काया,
चाँद चाँदनी की मदिरा में
है डूबा, भरमाया,

अलि अब तक भूले-भूले-से
रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ ।

(४)

रात बुझाएगी सच-सपने
की अनबूझ पहेली,
किसी तरह दिन बहलाता है
सब के प्राण, सहेली,

तारों के झँपने तक अपने
मन को दृढ़ कर लूँगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ ।

२७

चाँद चमकता, वायु ठुमकती,
छन-छन हिलती तरु की छाया ।

(१)

मैंने क्रांति निशान उठाया,
काम नया यह मैंने जाना,
किंतु उसीकी तैयारी में
बरसों से था व्यस्त ज़माना,

मैंने कुछ सीमाएँ तोड़ीं,
सोचा, नूतन राह निकाली,

चाह रहा था लेकिन युग ही
उसपर अपने पाँव बढ़ाना;

ये दो चुंबन काल-नदी में
बहनेवाले फूल नहीं हैं;
निज गति के मग़रूर समय से
क्षण भर मैंने आज चुराया।

चाँद चमकता, वायु ठुमकती,
छन-छन हिलती तरु की छाया।

(२)

एक गीत लिखकरके मैंने
जीवन का संदेश सुनाया,
हुआ मुझे भ्रम, जहाँ रुदन था
गायन बनकर मैं मुसकाया,

शत-शत कंठों से वह गूँजा,
मैं समझा, मेरी प्रतिध्वनियाँ,

पर वे आशा की घड़ियाँ थीं,
सबने ही उनका गुण गाया;

यह मुसकान तरंग-विनिर्मित
बालू पर की रेख नहीं है;
सबपर व्यापे शूर समय से
क्षण भर मैंने आज चुराया।

चाँद चमकता, वायु ठुमकती,
छन-छन हिलती तरु की छाया।

(३)

सालों श्रम कर, रातों जगकर
मैंने एक विचार निकाला,
पर सब जग यों सोच रहा था,
पा न सका कुछ मर्म निराला,

ज्ञान-कणों को स्वेद-कणों से
सिंचित करके मूर्ति बनाई,

किंतु गली वह, ले दुनिया ने
ज्योंही निज धारा में डाला;

यह दो आँसू काल जलधि में
खोनेवाले बिंदु नहीं हैं;
चिर विध्वंसक क्रूर समय से
क्षण भर मैंने आज चुराया।

चाँद चमकता, वायु ठुमकती,
छन-छन हिलती तरु की छाया।

२८

कहाँ, विमोहिनि, ले जाओगी
रिझा मुझे झंकृत पायल से ?

(१)

वहाँ ? जहाँ बौरी अमराई
में फैली है सुरभित छाया,
जहाँ जगत की धूप-धूलि से
दूर पिकी ने नीड़ बनाया,

जहाँ भृंग का गुंजन करता
व्यंग विश्व के कोलाहल पर,

झूम-झूमकर मंद अनिल ने
गीत जहाँ मस्ती का गाया,

दाग़-पराग लगाकर तितली
जहाँ नहीं लज्जित होती है,
जहाँ पहुँचकर तन पुलकित, मन
हो उठते मधु स्नात, शिथिल-से;

कहाँ, विमोहिनि, ले जाओगी
रिझा मुझे झंकृत पायल से ?

(२)

वहाँ ? जहाँ कवि के मानस का
मधुर स्वप्न साकार हुआ है,
जहाँ जवानी अजर हुई है
अमर जहाँपर प्यार हुआ है,

जहाँ समय के आघातों पर
सुंदरता हँसती रहती है,

वहाँ ? जहाँपर स्वर्ग धरा के
वैभव पर बलिहार हुआ है,

जहाँ कल्पना लेती रहती
होड़ गणित की सच्चाई से,
जहाँ पहुँचकर खुलता नाता
मानव का देवों के दल से;

कहाँ, विमोहिनि, ले जाओगी
रिझा मुझे झंकृत पायल से ?

(३)

वहाँ ? जहाँ मिट्टी के पुतलों
के पथ में चट्टान पड़ी है,
लेकर प्रश्न मरण-जीवन का
क़दम-क़दम पर नियति खड़ी है,

जहाँ पराजय ही अंकित है
मानव के सब संघर्षों पर,

जहाँ विफलता के क्रंदन से
घबराई प्रत्येक घड़ी है,

जहाँ उदर मानव का उसका
हृदय निगलने को तत्पर है,
जहाँ विश्व इतिहास लिखा है
खून-पसीने से, दृगजल से;

कहाँ, विमोहिनि, ले जाओगी
रिझा मुझे झंकृत पायल से ?

अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण,

मुक्त गगन के नीचे हम-तुम।

२६

अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण,

मुक्त गगन के नीचे हम-तुम।

(१)

संध्या की श्यामल अलकों ने
घेर लिया अंबर का आनन,
अवनी की अलसित पलकों पर
तंद्रा तिरती आती क्षण-क्षण

बंद हुए जग-नयन जिन्होंने
पर दूषण, पर दोष निहारा,

मौन हुई जग-जिह्वा करके
झूठा - सच्चा निंदन - वंदन,

आज़ादी की एक साँस से
सुरभित हुई प्रणय की वेला;
अब निर्भय, निःशंक, निराकुल
मुग्ध गगन के नीचे हम-तुम।

अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण,
मुक्त गगन के नीचे हम-तुम।

(२)

पिछले पहर दबे पावों से
आती है चाँदनी सहमती,
हवा लदी फूलों की बू से
चलती है पग-पग पर थमती,

आसमान पर पहरा दते
ऊँघ रहीं तारों की आँखें,

औ' धरती के कण-कण में है
मीठी-मीठी नींद विलमती,

यही घड़ी है मन के ऊपर
जब कोई प्रतिबंध नहीं है;
अब अपने सपनों से लिपटे
मुक्त गगन के नीचे हम-तुम।

अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण,
मुक्त गगन के नीचे हम-तुम।

(३)

आकाशी कुसुमों-कलियों को
रवि किरणों की धार बहाती,
और उसीमें रजनी अपने
मन की छाया-मूर्ति सिराती,

बदला अजिर कलित क्रीड़ा का
श्रम - संघर्षण - समरांगण में,

हाहाकार, कलह, क्रंदन की
तुमुल प्रतिध्वनि बढ़ती जाती,

व्यक्ति विलीन दलों के दुर्मद
जद्दोजहद में, रद्दोबदल में;
अब दुनिया के कोलाहल में
लुप्त गगन के नीचे हम-तुम ।

अस्त हुआ दिन, मस्त समीरण,
मुक्त गगन के नीचे हम-तुम ।

३०

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले ।

(१)

सिंदूर लुटाया, था रवि ने,
संध्या ने स्वर्ण लुटाया था,
थे गाल गगन के लाल हुए,
धरती का दिल भर आया था,

लहराया था भरमाया-सा
डाली-डाली पर गंध पवन,

जब मैंने तुमको औ' तुमने
मुझको अनजाने पाया था;

है धन्य धरा जिसपर मन का
धन धोखे से मिल जाता है;
पल अचरज और अनिश्चय के
पलकों पर आते ही पिघले,

पर सुधि में संचित साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले ।

(२)

सायं-प्रात: का कंचन क्या
यदि अधरों का अंगार मिले,
तारक मणियों की संपति क्या
यदि बाँहों का गलहार मिले,

संसार मिले भी तो क्या जब
अपना अंतर ही सूना हो,

पाना क्या शेष रहे फिर जब
मन को मन का उपहार मिले;

है धन्य प्रणय जिसको पाकर
मानव स्वर्गों को ठुकराता;
ऐसे पागलपन के अवसर
कब जीवन में दो बार मिले;

है याद मुझे वह शाम कि जब
नीलम-सी नीली सारी में, तुम, प्राण, मिलीं उन्माद-भरी
खुलकर फूले गुलमुहर तले।

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी, प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

(३)

आभास विरह का आया था
मुझको मिलने की घड़ियों में,
आहों की आहट आई थी
मुझको हँसती फुलझड़ियों में,

मानव के सुख में दुख ऐसे
चुपचाप उतरकर आ जाता,

है ओस ढुलक पड़ती जैसे
मकरंदमयी पंखुरियों में;

है धन्य समय जिससे सपना
सच होता, सच सपना होता;
अंकित सबके अंतरपट पर
कुछ बीती बातें, दिन पिछले;

कब भूल सका गोधूलि कि जब
सित-सेमल सादी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं अवसाद-भरी
कलि-पुहुप भरे गुलमुहर तले।

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम, प्राण, मिलीं नत, लाज-भरी
मधुऋतु-मुकुलित गुलमुहर तले।

३१

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं,
जिस ठौर लहरियाँ रागों की रस के मानस की गोदी में
चिर सुखमा का सावन गातीं ।

(१)

यह सच है सबने देखा है
मुझको जग के कोलाहल में,
जिस जगह कि थिर अस्थिर होता,
अस्थिर थिर होता पल-पल में,

जिस जगह नहीं कुछ भी पाता
अपना संगी, अपना साथी,

हर एक लगा है, लिपटा है
अपनी धुन, अपनी हलचल में;

इस शोर-शरर के भीतर भी
मैं गीत कहाँ से पाता हूँ,
जो शांति बसी-बरसी मुझमें
वह जान कहाँ दुनिया पाती;

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं,
जिस ठौर लहरियाँ रागों की रस के मानस की गोदी में
चिर सुखमा का सावन गातीं ।

(२)

यह सच है सबने देखा है
मुझको मरु में आते-जाते,
तावे-सी जलती बालू पर
तलवों को अपने झुलसाते,

अंधा करनेवाले अंधड़
में पथ अपना निश्चय करते,

चिनगारी-सी रेतों वाली
झंझा के झड़-झोंके खाते;

इन दाह भरे अभिशापों में
मैं प्रीति कहाँ से पाता हूँ,
मुझमें वरदान छलकते जो
वह देख कहाँ दुनिया पाती;

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं,
जिस ठौर तरंगें रागों की रस की सरिता से उठ-उठकर
प्यासे कूलों को नहलातीं।

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं
जिस ठौर लहरियाँ रागों की रस के मानस की गोदी में
चिर सुखमा का सावन गातीं।

(३)

यह सच है सबने देखा है
मुझको बेड़ी-हथकड़ियों में,
जिनपर चलता कुछ ज़ोर नहीं
ऐसी लोहे की लड़ियों में,

कुछ ज़ंजीरें जो लगती थीं
ऊपर से सुरभित गजरों-सी,
लीं डाल गले अपने मैंने
ख़ुद बेहोशी की घड़ियों में;

इतने बंधन में घिर-घुटकर
किसकी सत्ता जीती, जगती,
निःशंक निरंकुशता मेरी
पहचान कहाँ दुनिया पाती;

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं,
जिस ठौर कि मौजें रागों की रस के सागर से झूल-झपट
जीवन के तट पर टकरातीं।

तन त्रस्त कहीं, मन मस्त वहीं,
जिस ठौर लहरियाँ रागों की रस के मानस की गोदी में
चिर सुखमा का सावन गातीं।

३२

मैं गाता हूँ;
मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।

(१)

वे दुर्गम पथ का श्रम-संकट भी क्या जाने
जो उसपर पाँव बढ़ाते, गाते जाते हैं,
जिनके कंठों में गीत नहीं धीमे पड़ते
वे फूल सदृश पर्वत का बोझ उठाते हैं,

मैंने दुख-सुख हर हालत में गाना जाना,
मुझको जीवन का भार सदा शृंगार हुआ,

वह कुचला करता है उनको ही रागों में
अपने अनुभव को बाँध नहीं जो पाते हैं;

यौवन जिसका है तान वही भर सकता है
लेकिन मैं तो कुछ उलटी कर दिखलाता हूँ—

मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।
मैं गाता हूँ;
मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।

(२)

तुम मेरे पथ के बीच लिए काया भारी-
भरकम क्यों जमकर बैठ गए कुछ बोलो तो,
क्यों तुमको छूता है मेरा संगीत नहीं,
तुम बोल नहीं सकते तो झूमो, डोलो तो,

रागों की रोकी जा सकती है राह नहीं,
रोड़ो, हठधर्मी छोड़ो, मुझसे मन जोड़ो,

तुमसे भी मधुमय शब्द निकलकर गूँजेंगे,
तुम साथ ज़रा मेरी धारा के हो लो तो;

तुमने मुँह बाँधा, इससे ही तो पाँव बँधे,
मैं कंठ खुला ले आगे बढ़ता जाता हूँ—

मैं गाता हूँ, इसलिए रवानी मेरी है।
मैं गाता हूँ;
मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।

(३)

कलियाँ मधुवन में गंध-गमक मुसकाती हैं,
मुझपर जैसे जादू-सा छाया जाता है,
मैं तो केवल इतना ही सिखला सकता हूँ,
अपने मन को किस भाँति लुटाया जाता है,

लिखने दो अपनी दुर्बलता का गीत मुझे,
मैं जग के तर्ज़-अमल से हूँ अनभिज्ञ नहीं,

दुनिया अक्सर मेरे कानों में कहती है,
इस कमज़ोरी को, मूढ़, छिपाया जाता है;

मैं किससे भेद छिपाऊँ, सबतो अपने हैं,
अपनी बीती में जगबीती मैं पाता हूँ——

मैं गाता हूँ, यह प्रेम कहानी मेरी है।
मैं गाता हूँ;
मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।

(४)

तुम पा न सकोगे मुझे विश्वविद्यालय में,
लेक्चर देनेवाले मुझसे बहुतेरे हैं,
पहचानोगे क्या ख़ाकी वर्दी वालों में,
हर एक जगह पर इनके डीपो-डेरे हैं,

मैं क़लम और बंदूक़ चलाता हूँ दोनों,
दुनिया में ऐसे बंदे कम पाए जाते,

दावा न करूँगा ऐसों में यकताई का,
यद्यपि इनपर अधिकार स्वयं कुछ मेरे हैं;

औरों ने जो की भूल न तुम भी कर बैठो,
इसलिए तुम्हें यह पहले से बतलाता हूँ—

मैं गाता हूँ, यह ख़ास निशानी मेरी है।
मैं गाता हूँ;
मैं गाता हूँ इसलिए जवानी मेरी है।

३२

जीवन की आपाधापी में कब वक़्त मिला

कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,

जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला ।

(१)

जिस दिन मेरी चेतना जगी मैंने देखा
मैं खड़ा हुआ हूँ इस दुनिया के मेले में,
हर एक यहाँपर एक भुलावे में भूला,
हर एक लगा है अपनी-अपनी दे-ले में,

कुछ देर रहा हक्का-बक्का, भौचक्का-सा——
आ गया कहाँ, क्या करूँ यहाँ, जाऊँ किस जा ?

फिर एक तरफ़ से आया ही तो धक्का-सा,
मैंने भी बहना शुरू किया उस रेले में;

क्या बाहर की ठेला-पेली ही कुछ कम थी,
जो भीतर भी भावों का ऊहापोह मचा,
जो किया, उसी को करने की मजबूरी थी,
जो कहा, वही मन के अंदर से उबल चला;

जीवन की आपाधापी में कब वक़्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(२)

मेला जितना भड़कीला रंग-रँगीला था,
मानस के अंदर उतनी ही कमज़ोरी थी,
जितना ज़्यादा संचित करने की ख़्वाहिश थी,
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी,

जितनी ही बिरमे रहने की थी अभिलाषा,
उतना ही रेले तेज़ ढकेले जाते थे,
क्रय-विक्रय तो ठंडे दिल से हो सकता है,
यह तो भागा-भागी की छीना-छोरी थी;

अब मुझसे पूछा जाता है] क्या बतलाऊँ,
क्या मान अकिंचन बिखरता पथ पर आया,
वह कौन रतन अनमोल मिला ऐसा मुझको,
जिसपर अपना मन-प्राण निछावर कर आया;

यह थी तक़दीरी बात मुझे गुण दोष न दो,
जिसको समझा था सोना, वह मिट्टी निकली,
जिसको समझा था आँसू, वह मोती निकला ।

जीवन की आपाधापी में कब वक़्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

(३)

मैं कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ,
है एक कहीं मंज़िल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पाँव पड़े ऊँचे-नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली ही आती है,
मुझपर विधि का आभार बहुत-सी बातों का
पर मैं कृतज्ञ उसका इसपर सबसे ज़्यादा—
नभ ओले बरसाए, धरती शोले उगले,
अनवरत समय की चक्की चलती जाती है;

मैं जहाँ खड़ा था कल उस थल पर आज नहीं,
कल इसी जगह फिर पाना मुझको मुश्किल है;
ले मापदंड जिसको परिवर्तित कर देतीं
केवल छूकर ही देश-काल की सीमाएँ

जग दे मुझपर फ़ैसला उसे जैसा भाए
लेकिन मैं तो बेरोक सफ़र में जीवन के
इस एक और पहलू से होकर निकल चला।

जीवन की आपाधापी में कब वक़्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ,
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा-भला।

मिलन यामिनी

उत्तर भाग

१

कुदिन लगा, सरोजिनी सजा न सर,
सुदिन भगा, न कंज पर ठहर भ्रमर,
अनय जगा, न रस विमुग्ध कर अधर,
—सदैव स्नेह
के लिए
विकल हृदय !

कटक चला, निकुंज में हवा न चल,
नगर हिला, न फूल-फूल पर मचल,
ग़दर हुआ, सुरभि समीर से न रल,
—सदैव मस्त
चाल से
चला प्रणय !

समर छिड़ा, न आज बोल, कोकिला,
क़हत पड़ा, न कंठ खोल, कोकिला,
प्रलय खड़ा, न कर ठठोल कोकिला,
—सदैव प्रीति-
गीत के
लिए समय !

२

सुवर्ण मेघ युक्त पच्छिमी गगन,
विषाद से विमुक्त पच्छिमी गगन,
प्रसाद से प्रबुद्ध पच्छिमी हवा,
धरा सजग
अतीत को
बिसार फिर !

न ग्रीष्म के उसाँस का पता कहीं,
न 'अश्रुसिक्त वृक्ष औ' लता कहीं,
न प्राणहीन हो कहीं थमी हवा,
निशा रही
स्वरूप को
सँवार फिर !

मयंक-रश्मि पूर्व से लहक रही,
असुप्त नीड़-वासिनी चहक रही,
शरद प्रफुल्ल मल्लिका महक रही,
दहक रहा
बुझा हुआ
अँगार फिर !

३

निशा, मगर बिना निशा सिंगार के,
नखत थकित अचंद्र नभ निहार के,
क्षितिज-परिधि निराश, कालिमामयी,
परंतु
आसमान
इंतज़ार में !

घड़ी हरेक वर्ष-सी बड़ी हुई,
निशा पहाड़ की तरह खड़ी हुई,
नक्षत्र-माल चाल भूल-सी गई,
परंतु
कब थकान
इंतज़ार में !

प्रभात-भाल-चंद्र पूर्व में उगा,
प्रभात-बालचंद्र पूर्व में उगा,
प्रभात-लालचंद्र पूर्व में उगा,
परंतु
सुख महान
इंतज़ार में !

४

दिवस गया विवश थका हुआ शिथिल,
तिमिरमयी हुई बसुंधरा निखिल,
ज़मीन-आसमान में दिए जले,
मगर जगत
हुआ नहीं
प्रकाशमय !

सभी तरफ़ विभा बिखर गई तरुण,
कलित-ललित हुआ, सभी कलुष-करुण,
किसी समय बुझे हुए हिए जले,
किन्हीं नयन
प्रदीप में
जगा प्रणय !

चढ़ा मुँडेर मुर्ग़ सिर उठा रहा,
पुकार बारबार यह बता रहा,
सुभग, सजग, सजीव प्रात आ रहा;
नई नज़र,
नई लहर,
नया समय !

५

शिशिर समीर वन झकोर कर गया,
सिंगार वृक्ष-वेलि का किधर गया,
ज़मीन पीत पत्र-पुंज से भरी;
प्रकृति खड़ी
हुई, ठगी
हुई, अचित !

उठी पुकार एक शांति भंग कर,
उठा गगन सिहर, उठी अवनि सिहर,
'बिसार दो विषाद की गई घड़ी;'
प्रकृति खड़ी
हुई, जगी
हुई, भ्रमित !

शिशिर समीर बन गया मलय पवन,
नवीन गीत-प्राण से गुँजा गगन,
नवीन रक्त-राग से रँगी अवनि,
प्रकृति खड़ी
सुरस पगी,
सुअंकुरित !

६

प्रहार शीत वात का हुआ निठुर,
विकास पत्र-पुष्प का रुका ठिठुर,
प्रकृति विकारवान, पीलिमामयी,
डरी हुई
ज़मीन
थरथरा उठी !

सवेग स्वर्ग लोक से हवा चली,
हिली-डुली वनस्थली शिशिर-छली,
प्रकृति सजीवनी अमर विभामयी,
हरी हुई
ज़मीन
हरहरा उठी !

नयन भरे हुए नवल सिंगार से,
श्रवण भरे हुए प्रणय पुकार से,
हृदय भरे हुए मधुर विचार से,
भरी हुई
ज़मीन
मुसकरा उठी !

७

अपत्र डाल-डाल है खड़ी हुई,
बसन-विहीन, लाज में गड़ी हुई,
लुटा हुआ सिंगार सौ बसंत का,
छली हुई
विभूति से
वनस्थली !

अगण्य स्वप्न झड़ गए पलक-पले,
अगण्य भाव घाव चिह्न दे चले,
उसाँस इस तरह चला दिगंत का—
कि जड़ समेत
कल्पना
लता जली !

अजान शक्ति जीवनी सदा रही—
जली हुई लता सहास लहलही,
सजीव फिर हुई मरी हुई मही,
भरी हुई
पराग-पुष्प
अंजली !

८

दिनानुदिन जली धरा, जला गगन,
दिनानुदिन जला सलिल, जला पवन,
कहाँ तपन जिसे न छाँह घेरती,
कहाँ घड़ी
निदाघ की
अटल हुई।

तमाम ओर से घिरी घटा सघन,
अधीर हो उठी तपी-तची अवनि,
नियति न क्यों सवेग भाग्य फेरती,
कहाँ न प्यार
की घड़ी
विकल हुई!

तमाम रात भूमि पर पड़ी फुही,
सहस्र बिंदु माल से जड़ी जुही,
सुरभि सनी, सरस बनी खड़ी मही,
वियोग की
जलन कहाँ
विफल हुई!

९

बसंत-दूत कुंज-कुंज कूकता,
बसंत-राग कुंज-कुंज फूँकता,
पराग से सजी सुहाग मंजरी;
बसंत गोद
में लसी
प्रकृति परी !

प्रणय सँदेश कुँज-कुँज गूँजता,
प्रणय स्वरूप को सदैव पूजता,
कहाँ स्वरूपिनी न स्नेह पर ढरी;
बसंत गोद
में झुकी
प्रकृति परी !

बसंत-दूत मुग्ध मूक हो गया,
बसंत-बान गंध-मंद सो गया,
हुई सफल-विनम्र आम्र मंजरी;
बसंत गोद
में गड़ी
प्रकृति परी !

१०

विदग्ध भूमि व्योम को निहारती,
पिपासु कंठ मेघ को पुकारती,
भरा पयोद शुष्क भूमि हेरता;
कहाँ छिपी
मिलन घड़ी,
लगे झड़ी !

बयार घन शुभागमन वता रही,
तड़ित गगन-अधीरता जता रही,
विनम्र अभ्र भू समग्र घेरता;
निकट हुई,
मिलन घड़ी,
लगे झड़ी !

भरा पयोद भूमि पर गया विखर,
नहा निखिल दिगंबरा उठी निखर,
मिले सिंगार और स्नेह देह धर;
अमर हुई
मिलन घड़ी,
लगी झड़ी !

११

अनेक रंग से रँगा हुआ गगन,
अनेक रंग से रँगी हुई अवनि,
अनेक भाव से पगी हुई हवा;
सजी - बजी
गुलाब - गर्व
पंखुरी !

अनेक दीप से दमक रहा गगन,
अनेक दीप से दुपक रही अवनि,
अनेक भाव से जगी हुई हवा;
डरी खड़ी
गुलाब - गर्व
पंखुरी !

बुझे हुए प्रदीप आसमान के,
बुझे हुए प्रदीप सब जहान के,
क़सूरवार-सी ठगी हुई हवा;
झड़ी पड़ी
गुलाब - गर्व
पंखुरी !

१२

समेट ली किरण कठिन दिनेश ने,
समा बदल दिया तिमिर-प्रवेश ने,
सिंगार कर लिया गगन प्रदेश ने;
नटी निशीथ
का पुलक
उठा हिया !

समीर कह चला कि प्यार का प्रहर,
मिली भुजा-भुजा, मिले अधर-अधर,
प्रणय प्रसून सेज पर गया बिखर;
निशा सभीत
ने कहा कि
क्या किया !

अशंक शुक्र पूर्व में उवा हुआ,
क्षितिज अरुण प्रकाश से छुआ हुआ,
समीर है कि सृष्टिकार की दुआ;
निशा विनीत
ने कहा कि
शुक्रिया !

१३

दिवस नयन मुँदे, जगी विभावरी,
जगी ललाम लक्ष दीप की लड़ी,
युगल प्रदीप कौन से नहीं जले
कि आसमान
के सिंगार
में कसर !

ललाम लक्ष दीप मंद पड़ गए,
सिंगार सौ-हज़ार के उजड़ गए,
सनेह नेत्र दीप दीर्घ झलमले,
सुभाग चंद्र
से उठा
गगन सँवर !

निशा चुकी, गगन पटल बदल रहा,
विनीत पीत चंद्र मंद ढल रहा,
तुषार में नख़त-निकाय गल रहा;
जड़ा सुहाग
विंदु पूर्व
भाल पर !

१४

सिंदूर-सी किरण सुवर्ण थाल में
सुहाग लिख चली निशीथ भाल में,
हुई प्रसन्न भूमि साँझ-श्यामला;
क्षितिज लकीर
मंद मुसकरा
उठी !

कलानिधान रश्मियान पर चढ़े
प्रदीपवान आसमान पर बढ़े,
हुई समुद्र की तरंग चंचला;
धरा समग्र
दूध से
नहा उठी !

उषा-अरुण-वसन सजी बसुंधरा—
सदल, सफल, सुफुल्ल फूल उर्वरा—
चला समीर वृक्ष, वेलि, तृण हिला;
विहंग-पाँत
साथ चहचहा
उठी !

१५

समीर स्नेह-रागिनी सुना गया,
तड़ाग में उफान-सा उठा गया,
तरंग में तरंग लीन हो गई;
झुकी निशा,
झँपी दिशा,
झुके नयन !

बयार सो गई अडोल डाल पर,
शिथिल हुआ सलिल सुनील ताल पर,
प्रकृति सुरम्य स्वप्न बीच खो गई;
गई कसक,
गिरी पलक,
मुँदे नयन !

विहंग प्रात गीत गा उठा अभय,
उड़ा अलक चला ललक पवन मलय,
सुहाग नेत्र चूमने चला प्रणय;
खुला गगन,
खिले सुमन,
खुले नयन !

१६

सिंगारहार की सुगंधि आ रही,
सुवास में सुहासिनी नहा रही,
सुखी प्रकृति विलोक सिद्ध साधना;
विहँस-विहँस
खिले कुसुम,
खिले कुसुम !

असंख्य दीप स्वर्ग सौध में जले,
असंख्य बार प्यार से अधर मिले,
हुई असंख्य रूप एक भावना;
पुलक-पुलक
हिले कुसुम,
हिले कुसुम !

प्रकाशमान आसमान हो चला,
हुई शिथिल निशीथ-स्वप्न-शृंखला,
तुषार विंदु पत्र-पुष्प से ढला;
सिहर-सिहर
झड़े कुसुम,
झड़े कुसुम !

१७

हुई गुलाल मेघमाल अस्त जब,
विहंग वृक्ष में छिपे समस्त जब,
हुआ अशब्द और स्तब्ध जब गगन,
मुखर चरण
ध्वनित हुए
झनन-झनन् !

गगन खड़ा हुआ विशाल ताल में,
गगन सुबद्ध भूमि अंकमाल में,
चटुल युगल तरंग में मगन-मगन,
सुवर्ण
किंकिणी बजी
छनन-छनन !

अभी तलक अटूट नींद रात की,
खुली अभी नहीं पलक प्रभात की,
प्रसुप्त गुप्त नीड़ में मलय पवन,
खनक उठे
कनक वलय
खनन-खनन !

१८

किरण छिपी तड़ाग-अंतराल में,
सिमट गई सरोजिनी मृणाल में,
अगीत हो गया सभीत भृंग दल;
प्रणय सजग
हुआ, हृदय
हुए विकल !

कुसुम-कली सुगंध सेज पर सजी,
मधुर-मधुर सुवर्ण पैंजनी बजी,
पुलक प्रफुल्ल आज कामना सकल;
प्रणय सफल
हुआ, हृदय
मिले पिघल !

किरण खिली, विहँस पड़ी मृणालिनी,
ध्वनित हुई विमुक्त भृंग रागिनी,
हिली सकुच विलास-वाहु-वासिनी;
सटे अधर
हटे, हुए
नयन सजल !

१६

अधीर है समीर अंतरिक्ष में,
भरा पुलक लता, वितान, वृक्ष में,
उठी हरेक अंग बीच गुदगुदी,
उमंग की
तरंग-सी
उमड़ चली !

कसी हुई तड़ित पयोद-पाश में,
हुआ सँयोग वासना-विलास में,
प्रमत्त, स्वप्न-मग्न आँख अधमुँदी,
प्रणय-घटा
हृदय-गगन
घुमड़ चली !

बरस पड़े विवश जलद ज़मीन पर,
गमक उठी सुगंधि भूमि से उभर,
सरस रसा-दिशा, सजल नयन-अधर,
द्रवित निशा
प्रभात की
शरण चली !

२०

सहस्र नेत्र खोलकर खड़ा गगन,
सलज्ज-संकुचित पड़ी हुई अवनि,
किसी प्रबल प्रणय पिपासु की लगन
कि शर्वरी
प्रगति बिसार कर
खड़ी !

सुछवि निमेष छोड़ नेत्र पी रहे,
अमर हुए, कि मर चुके, कि जी रहे,—
कहाँ ज़बान प्रेम की कथा कहे,
करे बयान
स्नेह की सुघर
घड़ी !

प्रमत्त भावना न बात से बँधी,
प्रभात की किरण न रात से बँधी,
प्रणय निशा न अश्रु-पात से बँधी,
सहस्र नेत्र
से लगी हुई
झड़ी !

२१

नखत समूह आसमान पर चढ़ा,
सघन तिमिर ज़मीन की तरफ़ बढ़ा,
विहंग पंक्ति वृक्ष-नीड़ को चली,
अबाध
वाहुपाश को
विलासिनी !

नखत समूह की पलक झुकी हुई,
हवा किसी विचार में रुकी हुई,
निशीथ, मूर्ति अंधकार की ढली,
अचेत
वाहुपाश बीच
कामिनी !

उषा किरण-क़तार को सँभालती,
हवा सुगंध-भार को सँभालती,
धरा नवल प्रसून-दल, कलित कली,
चली
सँभाल अंग
हंस गामिनी !

२२

तरणि छिपा कि आँधियाँ झपट पड़ीं,
प्रकंपमान भूमि से लिपट पड़ीं,
सहस्र बार वज्र अस्त्र कड़कड़ा
घिरे घुमड़
सघन भयद
पयोद भी !

हुई प्रलय प्रहार से निशा दुखी,
उपाधि-व्याधि से दिशा-दिशा दुखी,
परंतु अंबरांत मुसकरा पड़ा,
कहीं मिटा
प्रभात का
प्रमोद भी !

प्रकृति पुनः किरण-सुहाग माँगती,
सुरभि-पराग-अंगराग माँगती,
प्रसून-सा प्रसन्न भाग माँगती,
कलोल से
गुँजायमान
गोद भी !

२३

नवीन राग में रमे नवीन घन,
निरत निनाद-नृत्य में तड़ित चरण,
अजस्र मर्मरित लतर-द्रुमावली,
प्रमुख पुकार
प्यास की
समीर में !

गरज गए जलद हुआ न मन विकल,
चमक गई तड़ित सका हृदय न गल,
द्रवित न कर सकी सिहर द्रुमावली,
लगा न तीर
पीर का
शरीर में !

विलीन हो गए कभी जलद सघन,
अदृश्य हो गए कभी तड़ित चरण,
अतृप्ति ही किए रहा प्रणय वरण,
पुकार ही
बची रही
अख़ीर में !

२४

पुकारता पपीहरा पि॰॰आ, पि॰॰आ,
प्रतिध्वनित निनाद से हिया-हिया;
हरेक प्यार की पुकार में असर,
कहाँ उठी,
कहाँ सुनी गई,
मगर !

घटा अखंड आसमान में घिरी,
लगी हुई अखंड भूमि पर झरी,
नहा रहा पपीहरा सिहर-सिहर;
अधर-सुधा
निमग्न हो रहे
अधर !

सुनील मेघहीन हो गया गगन,
बसुंधरा पड़ी पहन हरित बसन,
पपीहरा लगा रहा वही रटन;
प्रणय तृषा
अतृप्त सर्वदा,
अमर !

२५

विहंग माल डाल पर उतर पड़ी,
निशा धरा विशाल पर उतर पड़ी,
प्रकाशमान स्नेह का निलय हुआ,
प्रदीप लौ
जहाँ-तहाँ
हुई खड़ी !

प्रगाढ़ अंधकार में धँसी धरा,
प्रलंब वाहुपाश में फँसी धरा,
प्रमत्त नींद में प्रदीप लय हुआ,
प्रफुल्ल स्वप्न
से ललक
पलक जुड़ी !

विहंग भीड़ नीड़ से निकल पड़ी,
उषा क्षितिज लकीर से निकल पड़ी,
सुगंधि नव समीर से निकल पड़ी;
तुषार विंदु
भूमि सेज
पर झड़ी !

२६

बिखर हुई विलुप्त अभ्र अर्गला,
सुधा समुद्र चाँद से उमड़ चला,
निचोल खोल रूप राशि है पड़ी;
चकित गगन,
चकित नयन,
चकित गगन !

अभय हिलोर में विभोर है निशा,
अतुल हुलास-हर्षमय दिशा-दिशा,
अलस प्रमाद में जड़ित हुई घड़ी;
थकित गगन,
थकित नयन,
थकित गगन !

प्रभात में निमज्जिता हुई निशा,
प्रकाश में निरीह-सी दिशा-दिशा,
चली सवेग टूट स्वप्न की लड़ी;
स्रवित गगन,
स्रवित नयन,
स्रवित गगन !

२७

पहन चुका गगन नखत-खचित वसन,
पहन चुकी अवनि तमस-असित वसन,
असंख्य स्वप्न से लदे हृदय-नयन,
स्वभाव से
भरी हुई
विभावरी !

हरेक ठौर देव मूर्ति है खड़ी,
हरेक ठौर प्रभ परी उतर पड़ी,
सदेह स्वप्न से ठगे हृदय-नयन,
प्रभाव से
भरी हुई
विभावरी !

उतारता गगन नखत-जटित वसन,
उतारती अवनि तमस-रचित वसन,
गगन चकित-नयन, धरा चकित-नयन,
अभाव से
भरी हुई
विभावरी !

२८

बसंत का पवन कि श्वास प्यार का,
बसंत नाम दूसरा सिंगार का,
गिरा स्वरूप धार कंठ खोलती,
कि बोलतीं
बसंत की
नवेलियाँ !

बसंत में अचेत ही प्रणय रहा,
बसंत में उजाड़ ही हृदय रहा,
गिरा न मुक्त कंठ गीत गा सकी,
चहक चुकीं
बसंत की
सहेलियाँ !

बसंत से निराश किसलिए गगन?
बसंत से निराश किसलिए अवनि ?
निराश किसलिए शरीर-प्राण-मन ?
बुझा न सत्य
स्वप्न की
पहेलियाँ !

२६

पलाश पर दुलार, लो, उतर पड़ा,
पलाश पर सिंगार, लो, उतर पड़ा,
पलाश पर अँगार, लो, उतर पड़ा;
स्वरूप-स्नेह
के समीप
आग है।

मगर न रूप से कभी हृदय डरा,
मगर न स्नेह से कभी हृदय भरा,
उतर सका सुवर्ण की तरह खरा;
स्वरूप-स्नेह
का जला
अदाग है।

पलाश से दुलार, लो, गया उतर,
पलाश का सिंगार, लो, गया बिखर,
परंतु एक भाव हो गया अमर;
स्वरूप-स्नेह
का अनत
राग है!

३०

कि वह कभी न स्वर्ग में समा सका,
कि वह न पाँव नर्क में जमा सका,
कि वह न भूमि से हृदय रमा सका,
यही मनुष्य
का अमर
चरित्र है !

मनुष्य विश्व प्रेम में पगा हुआ,
मनुष्य आत्म-युद्ध में लगा हुआ,
हरेक प्रण-प्रयास में ठगा हुआ,
मनुष्य हर
स्वरूप में
पवित्र है !

अपूर्ण को न पूर्ण कर सका कभी,
अभाव के न घाव भर सका कभी,
हज़ार हार से न डर सका कभी,
मनुष्य की
मनुष्यता
विचित्र है !

३१

सुना कि एक स्वर्ग शोधता रहा,
सुना कि एक स्वप्न ख़ोजता रहा,
सुना कि एक लोक भोगता रहा,
मुझे हरेक
शक्ति का
प्रमाण है !

सुना कि सत्य से न भक्ति हो सकी,
सुना कि स्वप्न से न मुक्ति हो सकी,
सुना कि भोग से न तृप्ति हो सकी,
विफल मनुष्य
सब तरफ़
समान है !

विराग मग्न हो कि राग रत रहे,
विलीन कल्पना कि सत्य में दहे,
धुरीण पुण्य का कि पाप में बहे,
मुझे मनुष्य
सब जगह
महान है !

३२

कहीं अनादि का पता लगा रहा,
कहीं अनंत का अलख जगा रहा,
कहीं थहा रहा अगम्य सिंधु को,
कहीं समृद्ध
सिद्ध औ'
तपोधनी !

कहीं उठा रहा पहाड़ शीश पर,
कहीं प्रबल प्रवाह रोकता निडर,
कहीं बुला रहा समीप इंदु को,
कहीं प्रसिद्ध
जन समाज
अग्रणी !

कहीं किरण-वितान के तले खड़ा,
कहीं तुषार-विंदु की तरह जड़ा,
कहीं निकुंज में पराग-सा झड़ा,
कहीं असिद्ध
रूप-राग
का ऋणी !

३३

उसे न विश्व की विभूतियाँ दिखीं,
उसे मनुष्य की न ख़ूबियाँ दिखीं,
मिलीं हृदय-रहस्य की न झाँकियाँ,
सका न खेल
जो कि प्राण
का जुआ !

सजीव है गगन किरण-पुलक भरा,
सजीव गंध से बसी बसुंधरा,
पवन अभय लिए प्रणय कहानियाँ,
डरा - मरा
न स्नेह ने
जिसे छुआ !

गगन घृणित अगर न गीत गूँजता,
अवनि घृणित अगर न फूल फूलता,
हृदय घृणित अगर न स्वप्न झूलता,
जहाँ बहा
न रस वहीं
नरक हुआ !

समाप्त

ज्ञानपीठके आगामी प्रकाशन

[जो सन् '५० में प्रकाशित हो रहे हैं]

१. **हमारे आराध्य**—ये रेखाचित्र श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी सर्वोत्तम कृति है। इसमें उन्होंने अपनी आत्मा उँडेल दी है।

२. **शेर-ओ-सुख़न (प्रथम भाग)** उर्दू शायरीका प्रारंभसे ई० सं० १९०० तक का प्रामाणिक इतिहास। तुलनात्मक विवेचन, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमें हुए प्रायः सभी मशहूर शायरोंके श्रेष्ठतम कलामका संकलन तथा उनका परिचय।

३. **सिद्धशिला (काव्य)** सिद्धार्थके ख्यातिप्राप्त कवि श्री अनूप शर्माकी हिन्दी संसारको अमर देन। भगवान् महावीरका हृदयस्पर्शी जीवन।

४. **रेखाचित्र और संस्मरण**—हिन्दीके तपस्वी सेवक श्री बनारसीदास चतुर्वेदीकी जीवनव्यापी साधना। उनकी अन्तरात्माकी प्रतिध्वनि।

५. **बापू**—हिन्दीके उदीयमान तरुण कवि श्री 'तन्मय' बुखारिया की महात्मा गांधीके प्रति मूक श्रद्धाञ्जलि।

६. **भारतीय ज्योतिष**—ज्योतिषके अधिकारी विद्वान् श्री नमिचंद्र जी जैन ज्योतिषाचार्यकी प्रामाणिक कृति।

७. **ज्ञानगंगा**—संसारके महान् पुरुषोंकी श्रेष्ठतमं सूक्तियां।

नोट:—जो १०) भेजकर स्थायी सदस्य बन जाएंगे उन्हें उक्त ग्रंथ पौने मूल्य में प्राप्त होंगे।